रोचक ऐतिहासिक कहानियां

श्रीनारायण

रोचक ऐतिहासिक कहानियां

(भाग 2)

श्रीनारायण

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण : चैत्र 1910 (मार्च 1988)
द्वितीय संस्करण : माघ 1910 (फरवरी 1989)
पुनर्मुद्रण : अग्रहायण 1912 (नवम्बर 1990)

© प्रकाशन विभाग

मूल्य : 15.00 रुपये

/

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल० एल० ऑडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004

तारा आर्ट प्रेस, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्रकाशकीय

हमारी आंखों के सामने जैसे-जैसे विज्ञान के नए तथ्य उद्घाटित होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे हमारे भावों पर मस्तिष्क का शासन बढ़ता जा रहा है। एक सजग बालक अब परी-कथाओं और पौराणिक कहानियों की अस्वाभाविकता के प्रति प्रश्न-चिह्न लगाने लगा है। हालांकि ऐसी कहानियों में पात्र या वातावरण प्रधान नहीं होता, बल्कि उसका संदेश प्रधान होता है। अब तो स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि यथार्थवादी कहानियों की भी तथ्यातथ्य के आधार पर जांच-पड़ताल की जाने लगी है। ऐसी स्थिति में बच्चों के लिए बीच का रास्ता निकालना कठिन हो गया है। उस बीच के रास्ते की तलाश के दौरान हमारी दृष्टि इतिहास पर जाकर टिकी। इतिहास कमोवेश 'युगीन सत्य' का संग्रह है। काल के इस अनंत प्रवाह में कुछ ऐसी घटनाएं होती हैं जो सत्य होते हुए भी इतनी आश्चर्यजनक और रोचक होती हैं कि इतिहास को गवाही न हो तो सत्य नहीं लगतीं और सम्भव है, लोग उन्हें मनगढ़ंत कहानी ही समझें। यदि ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों को रोचक शैली में प्रस्तुत किया जाए, तो इससे इतिहास की जानकारी तो मिलती ही है, साथ ही ये कहानियां बच्चों के मन में जाने-अनजाने श्रेष्ठ मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा भी करती हैं। आशा है, सभी आयु वर्ग के पाठकों को यह पुस्तक पसंद आएगी।

—डा० श्यामसिंह शशि
निदेशक

पाठकों से

इतिहास केवल राजनैतिक घटनाओं का संकलन मात्र नहीं होता, बल्कि उसमें युग का सम्पूर्ण व्यक्तित्व स्पंदित होता है। इतिहास की शुरुआत स्थितियों से होती है, जो कारणों को जन्म देती है, और उन कारणों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप निष्कर्ष सामने आते हैं। इस प्रकार अतीत की घटनाओं का यह लेखन वर्तमान के लिए सुंदर एवं प्रेरणादायी उदाहरण बन जाता है। इस दृष्टि से इतिहास एक नीरस विवरण मात्र नहीं रह जाता, बल्कि हमारी दृष्टि को अतीत में ले जाकर सुदूर भविष्य के सही केन्द्र-बिंदु तक पहुंचाने वाला उपयुक्त माध्यम भी बन जाता है। इस व्यापक दृष्टि का विस्तार व्यक्ति के निर्माण के आरम्भ से ही हो जाना अधिक श्रेयस्कर है। विश्व-इतिहास के विस्तृत फलक में अनेक ऐसे प्रभावशाली चरित्र एवं आश्चर्यजनक घटनाएं बिखरी पड़ी हैं, जिन पर मन सहज विश्वास नहीं करना चाहता। अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण ऐसे चरित्र और घटनाएं असाधारण हो जाती हैं। ऐसे चरित्र एवं घटनाओं का विशेष उल्लेख युग-विशेष की जिजीविषा को व्यक्त करता है। मेरा मानना है कि यदि हम इन्हें कहानी की शक्ल देकर बालकों को उपलब्ध कराएं, तो ये उनके अंदर उदात्त गुणों की वृद्धि के लिए उत्प्रेरक का काम करेंगे।

प्रकाशन विभाग के निदेशक डा० श्यामसिंह शशि का मैं विशेष रूप से ऋणी हूं। वह मेरे प्रेरणा-स्रोत हैं। उनके प्रोत्साहन ने ही मुझे पुस्तक के लेखन हेतु मनोबल प्रदान किया है।

पुस्तक पाठकों को अच्छी लगी, तो यह प्रयास सार्थक हुआ मानूंगा।

—श्रीनारायण

क्रम-सूची

1.	काठ का घोड़ा	1
2.	पहली मैराथन दौड़	5
3.	रोम की रक्षा	9
4.	जब बत्तखों ने नगर को बचाया	14
5.	वीरता का सम्मान	18
6.	मत चूकै चौहान	22
7.	बादशाह—दो दिन का	27
8.	सूरज नहीं डूबेगा	32
9.	नकली किला और असली लड़ाई	38
10.	ठौर-ठौर राठौर	43
11.	एक और एंड्रोक्लीज	52
12.	बसई का विजेता	57
13.	रानी—जो पुरुष वेश में लड़ी	63
14.	इनाम के बदले फांसी	69
15.	बर्फ का जहाज	73

1. काठ का घोड़ा

आज से लगभग तीन हजार साल पहले दो देशों के बीच एक बेहद रोमांचक और बहुत लम्बा युद्ध लड़ा गया था। ये देश थे—ट्राय और यूनान। यह युद्ध 'ट्रोजन वार' के नाम से मशहूर है। इस युद्ध को विषय बनाकर अनेक महाकाव्य, उपन्यास और अन्य रचनाएं लिखी गई हैं। अंग्रेजी के महाकवि होमर का मशहूर महाकाव्य 'इलियड' इसी युद्ध की घटनाओं पर आधारित है।

इलियड का अर्थ है—इलियम के बारे में। 'ट्राय' को ग्रीक भाषा में इलियम कहते हैं। ट्राय के शासक थे प्रियम, जिनके दो पुत्र थे—हेक्टर और पेरिस।

यूनान उस समय अनेक छोटे-छोटे नगरों में बंटा हुआ था, जिनमें प्रमुख थे—स्पार्टा, एथेंस आदि। एक बार प्रियम का पुत्र पेरिस स्पार्टा गया। स्पार्टा का शासक मेनेलास कहीं बाहर गया हुआ था, अतः उसकी पत्नी हेलेन ने पेरिस की आवभगत की। हेलेन का सौंदर्य उस समय मशहूर था और चर्चा थी कि वह पूरे यूनान की सबसे सुंदर महिला है। पेरिस उसके सौंदर्य पर इतना मुग्ध हुआ कि उसे बंदी बनाकर अपने साथ ट्राय ले गया।

मेनेलास जब वापस आया, तो उसे सारी बात का पता चला। वह इस अपमान से तिलमिला उठा। ट्राय के राजकुमार की इतनी हिम्मत कि वह मेरी पत्नी का अपहरण करके ले जाए? मुझे उसे इसका मजा चखाना होगा! पर कैसे? वह सोच में पड़ गया, क्योंकि ट्राय उस समय एक अत्यंत शक्तिशाली राज्य था और उसे हरा पाना आसान न था।

काफी सोच-विचार के बाद मेनेलास ने यूनान के सारे नगरों के शासकों की सभा बुलाई और कहा—"ट्राय के राजकुमार ने आज स्पार्टा की इज्जत पर हमला किया है। कल वह आपकी इज्जत पर भी हमला कर सकता है। हम ट्राय को इस बात की इजाजत नहीं देंगे। इसके लिए जरूरी है कि यूनान के सारे बिखरे हुए नगर एक हो जाएं और मिलकर ट्राय पर हमला करें।"

यूनान के समस्त राजाओं ने इस बात के लिए अपनी सहमति दी। उन्होंने स्पार्टा को सैनिक सहायता देने का वचन दिया। सारे यूनान में युद्ध की तैयारियां होने लगीं। अंततः एक विशाल सेना ने ट्राय की ओर कूच किया।

ट्राय के चारों ओर मजबूत और ऊंची दीवारें थीं और उसका फाटक लोहे का था। यूनान की सेना ने ट्राय के चारों ओर घेरा डाल दिया और युद्ध शुरू हो गया।

दिन-पर-दिन बीतते गए और युद्ध जारी रहा। दोनों ही सेनाएं मोर्चे पर डटी रहीं। उनमें से कोई भी हार मानने को तैयार न था। हजारों सैनिक मारे गए, पर यूनान के लोग ट्राय के भीतर घुस पाने में सफल नहीं हो सके।

धीरे-धीरे घेरा डाले हुए दस वर्ष बीत गए। सैनिक थक चुके थे और उन्हें घर की याद भी सताने लगी थी।

इस अंतहीन युद्ध से मुक्ति पाने के लिए एक दिन यूनान के प्रमुख सेनापतियों में सलाह-मशविरा हुआ। वे लोग समझ चुके थे कि रण-कौशल से ट्राय को हरा पाना आसान नहीं है। अब उन्होंने नीति कौशल और चतुराई से काम लेने का फैसला किया। एकिलस उनमें सबसे बहादुर था और यूलीसिस सबसे बुद्धिमान। अंततः यूलीसिस ने एक योजना बनाई। योजना के अनुसार सैकड़ों फुट ऊंचे एक काठ के घोड़े का निर्माण किया गया और उसके पेट में यूनान के कुछ सैनिक छिपकर बैठ गए। उस घोड़े को खींचकर ट्राय के दुर्ग के सामने खड़ा कर दिया गया।

अगले दिन सुबह ट्राय के सैनिकों ने देखा कि यूनानी सेना के तम्बू उखड़े हुए हैं और वे नावों पर सवार होकर वापस जा रहे हैं। सैकड़ों नावों में चप्पू चल रहे थे और धीरे-धीरे वे नावें आंखों से ओझल हो गईं। ट्राय के सैनिक पहले तो स्तब्ध रह गए, फिर उन्होंने दौड़-दौड़कर सारे शहर में यह समाचार सुनाया कि यूनानी सैनिक हार मानकर वापस लौट गए हैं और ट्राय युद्ध जीत गया है। अब निश्चित होकर ट्राय के सैनिकों ने किले का दरवाजा खोल दिया। वह दरवाजा कई वर्षों के बाद खुल रहा था। दरवाजा खुलते ही उनके चेहरों की खुशी उड़ गई और उसका स्थान आश्चर्य ने ले लिया। दरवाजे के ठीक सामने एक विशालकाय काठ का घोड़ा रखा हुआ था। वे कुछ समझ नहीं पाए कि यह आखिर है क्या?

उनमें से एक बोला—"यह नकली घोड़ा यहां कौन छोड़कर जा सकता है?"

"मुझे तो इसमें यूनान वालों की कोई चाल नजर आ रही है।" दूसरे सैनिक ने सशंकित होकर कहा।

"सेनापति को खबर देनी चाहिए।" तीसरे ने सुझाव दिया।

कुछ सैनिकों ने जाकर सेनापति को यह सूचना दी। सेनापति ने भी इस घोड़े का निरीक्षण किया। दो सम्भावनाएं थीं—या तो यूनानी सैनिकों ने ट्राय को उसकी विजय पर यह उपहार के रूप में दिया है या इसमें उनकी कोई चाल है। काफी देर तक निरीक्षण और सलाह करने के बाद उन्होंने आदेश दिया—"घोड़े को खींचकर अंदर ले चलो।"

सैनिकों ने घोड़े को खींचना शुरू किया। वह काफी भारी था। सैनिकों को बहुत परिश्रम करना पड़ा। जैसे-तैसे वे घोड़े को खींचकर किले के अंदर कर पाए।

नागरिकों को इस आश्चर्यजनक घोड़े के बारे में पता चला, तो वे उसे देखने आने लगे। उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ। कोई उसे छूकर देखता, तो कोई डर के मारे दूर से ही देख लेता।

बच्चों के लिए यह घोड़ा जैसे कोई अनोखी चीज हो गई थी और वे ताली बजा-बजाकर उसके चारों ओर नाचने लगे। सारे लोगों ने यही समझा कि यूनान ने अपनी हार स्वीकार कर ली है और उपहारस्वरूप यह काठ का घोड़ा छोड़ गए हैं।

काठ के घोड़े से अचानक सैनिक निकल पड़े

दस वर्षों के लंबे समय के बाद युद्ध का तनाव खत्म हुआ था, अतः ट्राय के सैनिकों ने खूब शराब पी और नाच-गाकर सो गए। सावधानी के लिए किले का विशाल फाटक बंद कर दिया गया।

रात गहरी हो चुकी थी। चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। ट्राय के लोग आज वर्षों बाद चैन से सो रहे थे। अचानक कुछ चप्पुओं की आवाजों ने रात की गहरी खामोशी को तोड़ा। यूनान के वे सैनिक जो ट्रायवासियों को धोखा देने के लिए सवेरे वापस चले गए थे, रात में फिर लौट रहे थे। धीरे-धीरे सैकड़ों नावें ट्राय के तट से आ लगीं और सैनिक किले के सामने आ खड़े हुए। उधर घोड़े के पेट में छिपे सैनिक चुपके से बाहर निकले और उन्होंने किले का दरवाजा खोल दिया। हजारों सैनिक किले के अंदर घुस गए।

दरवाजा खुलने की चरमराहट और सैनिकों के शोर से कुछ पहरेदारों की आंखें खुल गईं। जो कुछ हो रहा था, उसे देखकर उनकी आंखें फटी-की-फटी रह गईं। दरवाजा खुला हुआ था और यूनान के सैनिक टिड्डी-दल की भांति अंदर चले आ रहे थे। सारा ट्राय बेखबरी की नींद सो रहा था। पहरेदारों के हाथों के तोते उड़ गए। उन्होंने बेतहाशा खतरे की घंटी बजानी शुरू कर दी। ट्राय के सैनिक नशे में धुत पड़े हुए थे—कुछ उठे और कुछ लड़खड़ाकर गिर पड़े। कुछ सैनिकों ने अंधाधुंध तलवारें घुमानी शुरू कर दीं और अपने ही सैनिकों को काट डाला।

भोर होते-होते यूनान के सैनिकों ने ट्राय को रौंद डाला। बरसों से महल में कैदी का जीवन बिता रही रानी हेलेन को छुड़ा लिया गया और वे उत्साह से भरे हुए यूनान वापस लौटे।

मेनेलास बहुत खुश हुआ। बरसों बाद अपनी पत्नी हेलेन को पाकर उसकी आंखें खुशी से भर उठीं। हेलेन भी उस लम्बी कैद से मुक्ति पाकर बहुत खुश थी। स्पार्टा में ही नहीं, सारे यूनान में इस जीत का जश्न मनाया गया। इस जीत से यूनान के रण कौशल और नीति कौशल की धाक जम गई।

2. पहली मैराथन दौड़

वह नवयुवक बहुत दूर से भागता आ रहा था। उसमें इतनी शक्ति भी नहीं बची थी कि वह खड़ा भी हो सके। लड़खड़ाते कदमों से वह घिसट रहा था, हांफ रहा था और बार-बार अपना सीना पकड़ रहा था। अशक्त हो जाने के बावजूद उसके मन में उत्साह था।

फिडीपिडीज अपने साथी की बांहों में झूल गया

आखिर, अपने उस गंतव्य पर पहुंचकर ही उसने दम लिया, जहां उसके साथी आतुरता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

"खुशियां...मनाओ...हम...जीत गए।" टूटे-फूटे शब्दों में किसी तरह उसने अपनी बात पूरी की और अपने साथियों की बांहों में झूल गया।

थोड़ी ही देर बाद उसकी मौत हो गई, लेकिन उसने वह काम कर दिखाया जिससे इतिहास के पन्नों में वह अमर हो गया। मरने से पहले वह हजारों एथेंसवासियों के चेहरों पर खुशी की चमक दे गया। वह नवयुवक था फिडीपिडीज।

आज से लगभग दो हजार साल पहले की बात है। यूनान में उस समय कई छोटे-छोटे नगर थे, जैसे—स्पार्टा, एथेंस, पर्शिया आदि। पर्शिया का राजा डेरियस बहुत उद्दंड और अहंकारी था। एक बार वह एथेंस के निवासियों से नाराज हो गया। एथेंसवासियों से कोई भूल हो गई थी। इतनी-सी बात पर वह एथेंसवासियों को सबक सिखाने के लिए युद्ध की तैयारी करने लगा। उसने एक बहुत बड़ा जहाजी बेड़ा तैयार कराया और लगभग एक लाख बहादुर सशस्त्र सैनिकों को साथ लेकर यूनान की ओर चल पड़ा।

एजियन समुद्र से होता हुआ डेरियस का वह विशाल बेड़ा मैराथन की खाड़ी में पहुंचा। पर्शिया के सैनिकों ने मैराथन के मैदान पर पड़ाव डाला। वे एथेंस के खूबसूरत शहर को उजाड़ देने के लिए उतावले थे। उनकी आंखों से वहशीपन झलक रहा था। वे बार-बार अपने भाले हवा में उछालकर मानो एथेंस को चुनौती दे रहे थे।

एथेंसवासियों के पास अपने प्यारे शहर को बचाने का अब एक ही उपाय बचा था—वह यह कि वे शहर से 26 मील दूर मैराथन के मैदान में जाकर पर्शिया की सेना का मुकाबला करें।

एथेंस के सैनिक तुरंत ही मैराथन के पास एक पहाड़ की चोटी पर पहुंच गए और शत्रु-सेना का मुआयना करने लगे। पर्शिया की विशाल सेना देखकर वे हैरत में पड़ गए। पर्शिया की सेना में लगभग एक लाख सैनिक थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि इतनी विशाल सेना का मुकाबला कैसे कर पाएंगे, क्योंकि वे खुद सिर्फ नौ हजार थे।

वे सब परेशान थे कि क्या किया जाए। उनकी परेशानी देखकर एक वृद्ध अनुभवी सैनिक ने सुझाव दिया—"हमें एक दूत को स्पार्टा भेजकर उनसे मदद मांगनी चाहिए।"

"तुम ठीक कहते हो!" एथेंस का सेनापति मिलिटेड्स तनिक सोचकर बोला—"जब तक स्पार्टा के सैनिक हमारी मदद के लिए नहीं आ जाएं, तब तक हम दुश्मनों को यहीं रोके रखेंगे।"

स्पार्टा, एथेंस से दो सौ मील दूर था और उन दिनों यातायात और संचार के साधन आज की तरह विकसित नहीं थे। इसलिए उनके सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठा कि

जल्द-से-जल्द वह संदेश स्पार्टा कौन पहुंचा सकता है ? वे फिर सोच में पड़ गए।

तभी सेनापति को कुछ ध्यान आया और वह लगभग चिल्लाकर बोला—"फिडीपिडीज कहां है ?"

"कहिए सेनापति, मेरे लिए क्या आदेश है ?" फिडीपिडीज ने आगे आकर अभिवादन करते हुए कहा।

"देखो नौजवान ! ओलम्पिया के खेलों में तुमने कई लम्बी दौड़ें जीतकर ओलिव का ताज हासिल किया है और एथेंस का गौरव बढ़ाया है। आज तुम्हारे देश पर संकट आ गया है। आज तुम्हारी असली परीक्षा है। इस दौड़ से तुम्हें तो कोई ताज नहीं मिलेगा, लेकिन अगर तुम कामयाब हो गए तो एथेंस के माथे पर से स्वतंत्रता का ताज नहीं छिनेगा। हमें उम्मीद है कि तुम निराश नहीं करोगे।" सेनापति ने भावावेश में कहा।

"नहीं सेनापति, मुझे तो गर्व है कि आज मुझे अपने देश की सेवा करने का अवसर मिला है।" फिडीपिडीज ने कहा और चल पड़ा।

रास्ता ऊबड़-खाबड़ था और खतरनाक भी। जंगली जानवरों से बचता-बचाता वह भागता रहा। रास्ते में पहाड़ों के दर्रों से भी गुजरना था और तैरकर नदियां भी पार करनी थीं, लेकिन उसके कदम कहीं रुके नहीं।

दो दिन और दो रात लगातार दौड़ने के बाद वह स्पार्टा पहुंचा। स्पार्टा के लोगों को उसने संदेश दिया—"पर्शिया की विशाल सेना ने एथेंस पर आक्रमण कर दिया है और वे हमारे शहर को तबाह कर देना चाहते हैं। हमें आप लोगों की मदद चाहिए।"

स्पार्टा के सेनापति ने जवाब दिया—"हमारे यहां प्रथा है कि पूर्णमासी से पहले हम कहीं सेना नहीं भेजते। अतः चांद पूरा निकलने के बाद हम सेना एथेंस भेज देंगे।"

फिडीपिडीज यह जवाब सुनकर बुझ-सा गया। उसने हताश होकर कहा—"पूर्णमासी आने में तो अभी पूरे पांच दिन बाकी हैं। एथेंस को मदद की तुरंत आवश्यकता है। पांच दिनों में तो सब कुछ खत्म हो सकता है !"

"हम अपनी प्रथा को नहीं तोड़ सकते !" स्पार्टा के सेनापति ने दो टूक जवाब दिया।

फिडीपिडीज समझ गया कि स्पार्टा वालों ने एक तरह से धोखा ही दिया है। अब यह समाचार कि स्पार्टा वाले पांच दिनों के बाद ही कूच करेंगे, सेनापति तक पहुंचाना बहुत जरूरी था, क्योंकि वे मदद का इंतजार कर रहे होंगे। उसने दो क्षण सोचा और बिना एक पल भी आराम किए वह फिर चल पड़ा।

एक बार फिर वही रास्ता...फिर वही दो सौ मील की लम्बी दौड़...वही नदियां, नाले, पहाड़, जंगल...और एक बार फिर वही उत्साह, वही संकल्प ! शरीर जवाब दे रहा था, मगर उसके सिर पर एक जुनून सवार था। आज देश को उसकी जरूरत है...उसे अपना कर्तव्य पूरा करना है।

लड़खड़ाते कदमों से वह वापस एथेंस पहुंचा।

इधर सेनापति मिलिटेड्स के कुशल नेतृत्व में एथेंस के सैनिक जान की बाजी लगाकर लड़ रहे थे। प्लेटिया नामक शहर से भी कुछ सैनिक एथेंस की मदद को आ पहुंचे। एथेंस के सैनिक अपनी मातृभूमि को बचाने के लिए जान की बाजी लगाकर लड़ रहे थे। उनके सामने एक महान उद्देश्य था। उनकी आंखों में एथेंस का भविष्य था और पर्शिया के सैनिकों की आंखों में बड़ी सेना होने का अहंकार। एथेंस के सैनिक एक-एक इंच जमीन के लिए लड़ रहे थे। वहां के सामान्य नागरिक भी उनकी हर सम्भव सहायता कर रहे थे। महिलाएं भी घायल सैनिकों की चिकित्सा कर रही थीं।

घमासान लड़ाई के बाद अंतत: देश-प्रेम की प्रबल भावना विजयी हुई और खोखले अहंकार ने घुटने टेक दिए। पर्शिया के सैनिक अपने प्रतिद्वंदियों का रण कौशल देखकर हैरान थे। एक बेहद छोटी सेना ने अपने से दस गुनी बड़ी सेना पर अप्रत्याशित रूप से विजय प्राप्त की। पर्शिया के सैनिक मैदान छोड़कर भाग रहे थे।

सेनापति मिलिटेड्स और उनके साथी बहुत खुश थे। यह खुशी का समाचार एथेंस-वासियों तक पहुंचाने के लिए फिडीपिडीज एक बार फिर चल पड़ा।

युद्ध के मैदान से राजधानी 26 मील दूर थी। फिडीपिडीज थककर चूर था, लेकिन उसे इसकी परवाह कहां थी। उसने सोचा, इतनी बड़ी जीत का समाचार अपने देशवासियों को सुनाने का गौरव भी मुझे ही मिले। उसे लगा, वह हवा में उड़ता जा रहा है।

राजधानी के दरवाजे पर पहुंचकर वह अपनी थकी लेकिन जोशीली आवाज में चिल्लाया—"खुशियां...मनाओ...हम...जीत गए।"

दरवाजा खुला और हजारों नागरिकों ने उसे घेर लिया। सबके चेहरे उल्लास से चमक रहे थे। लोगों ने उसे अपने कंधे पर उठा लिया और खुशी से उसे चूमने लगे। वह लोगों की बांहों में झूल गया। इस समय उसे याद आ रहा था वह क्षण, जब ओलम्पिया के मैदान में दौड़ जीतने के बाद तालियों की गड़गड़ाहट के बीच सम्राट ने उसके सिर पर ओलिव का ताज पहनाया था। लेकिन आज का क्षण उसके लिए ज्यादा गौरव का था। उसे लगा स्वयं जुपिटर देवता उसके माथे पर ताज पहना रहे हों। थोड़ी ही देर में उसकी आंखें बंद हो गईं और वह चिरनिद्रा में सो गया।

इसी दौड़ की याद में आज ओलम्पिक खेलों में मैराथन दौड़ का आयोजन किया जाता है।

3. रोम की रक्षा

हर देश और जाति का इतिहास वीर पुरुषों की गाथाओं से भरा हुआ है। हर काल में, हर युग में ऐसे वीर पुरुष हुए हैं, जिन्होंने अपने साहसपूर्ण कार्यों से लोगों में उत्साह जगाया और उन्हें प्रेरित किया। प्राचीन समय में रोम में भी अनेक वीर पुरुष हुए हैं, जिनमें होरेशस का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

प्राचीन काल की बात है। रोम में टार्क्विन नामक राजा राज्य करता था। वह बहुत क्रूर और निर्दयी था। जनता उसके तानाशाही रवैये से बहुत परेशान थी। अंततः लोग संगठित हुए और उसे अपदस्थ कर दिया। लोगों ने एकमत होकर निर्णय लिया कि रोम का शासन अब किसी राजा की सनक पर नहीं चलेगा। भविष्य में विद्वान और बुद्धिमान लोगों की एक सभा राज्य का कार्यभार संभालेगी।

राजा टार्क्विन के मन में राज्य छिन जाने का दुख था, पर वह इतनी आसानी से हार मानने वाला नहीं था। वह शक्ति और सत्ता का भूखा था और उसे पुनः प्राप्त करने के लिए कुछ भी कर सकता था। उसने पड़ोसी राजा लार्स प्रोसेन से सहायता मांगी। टार्क्विन ने उसे भड़काया कि आज मुझे अपदस्थ किया गया है, तो तुम्हारे देश की जनता कल तुम्हें भी गद्दी से उतार सकती है। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए जरूरी है कि रोम की जनता को सबक सिखाया जाए। लार्स प्रोसेन इस आशंका से डर गया और टार्क्विन की मदद के लिए राजी हो गया। उसने रोम के लोगों को सबक सिखाने के लिए विशाल सेना भेजी।

सैनिकों के हाथों में तलवार और भाले चमचमा रहे थे और उनके कदमों से धूल की आंधी उड़ रही थी। वे रास्ते में पड़ने वाले गांवों को लूटते जा रहे थे और उनमें आग लगाते जा रहे थे। भयभीत ग्रामीण जो कुछ भी साथ ले जा सकते थे, उसे लेकर रोम की तरफ भागने लगे। बच्चे, बूढ़े और औरतें सभी की आंखों में भय और आतंक की छाया थी। वे हांफते, गिरते-पड़ते रोम की तरफ भाग रहे थे।

खूबसूरत शहर रोम टाइबर नदी के किनारे बसा हुआ था और शहर में प्रवेश करने के लिए नदी पर एक लकड़ी का पुल बना था। पुल बहुत संकरा था, इतना संकरा कि उस पर एक बार में ज्यादा-से-ज्यादा तीन आदमी खड़े हो सकते थे। नदी के एक तरफ रोम था और दूसरी तरफ जैनिकुलम किला था, जो शत्रुओं को रोकने के लिए बनाया गया था। किले के सैनिकों ने शोर की आवाज सुनी, तो वे बाहर आए। उन्होंने देखा कि सैकड़ों ग्रामीण घबराए हुए भागे चले आ रहे हैं। ग्रामीणों ने सैनिकों को रोते-रोते सारा हाल कह सुनाया कि किस

प्रकार उन्हें लूटा गया है और उनकी सम्पत्ति जलाई गई है। उन्होंने सैनिकों से रक्षा की प्रार्थना की।

सैनिकों ने ग्रामीणों को ढाढस बंधाया—"अब आप लोगों को डरने की कोई जरूरत नहीं है। पुल को पार करके शहर में चले जाइए। शहर के चारों ओर की घेराबंदी बहुत मजबूत है। अंदर जाकर आप लोग पूरी तरह सुरक्षित रहेंगे। हम लोग यहां शत्रु को रोकेंगे।"

ग्रामीण कुछ निश्चित से होकर पुल पार करके रोम की सुरक्षित चारदीवारी में पहुंचे और रोमवासियों को आपबीती सुनाने लगे।

इधर जैनिकुलम किले के सिपाहियों ने जब शत्रु सेना के कदमों से उठने वाली भारी धूल देखी, तो खतरे की घंटी बजा दी और सबको सावधान रहने के निर्देश दिए।

रोम के निवासी अपनी-अपनी छतों पर खड़े होकर शत्रु की सेना को देखने लगे। कुछ की आंखों में दहशत छा गई, तो कुछ जोश में आकर हाथ उठा-उठाकर बातें करने लगे।

शत्रु-सेना के नजदीक पहुंचने पर किले के सैनिकों ने उन पर हमला बोल दिया। घमासान संघर्ष छिड़ गया।

थोड़ी ही देर में किले के सेनापति को आभास हो गया कि वे शत्रु की विशाल सेना के आगे ज्यादा देर तक नहीं टिक पाएंगे और उनके हारते ही शत्रु पुल पार करके रोम में घुस जाएंगे। उसने तुरंत कुछ चुने हुए सैनिकों को ताजा स्थिति बताने के लिए नगर में भेज दिया।

रोम के प्रधानमंत्री द्वार पर ही थे। सैनिकों ने उन्हें सारी स्थिति बताते हुए कहा, "जैनिकुलम किला अब गिरने ही वाला है। दुश्मनों से रोम को बचाने के लिए जल्दी ही कुछ करना होगा।"

प्रधानमंत्री कुछ समय तक चिंतित मुद्रा में घूमते रहे, फिर एकाएक बोले—"रोम में प्रवेश करने का एक ही रास्ता है और वह है लकड़ी का पुल। यदि उस पुल को काट दिया जाए, तो शत्रु शहर में नहीं आ पाएंगे।"

सभी लोग इस विचार से सहमत हो गए। परंतु यह कार्य इतना आसान नहीं था। पुल को काटते समय दुश्मन को बाहर ही रोके रखना जरूरी था और यह काम बहुत ही कठिन था। दुश्मनों की इतनी बड़ी सेना को पुल कटने तक बाहर ही कैसे रोका जाए! इसमें जान जाने का खतरा था!

अचानक भीड़ में से एक आवाज आई—"दुश्मनों को मैं रोकूंगा।" भीड़ को चीरकर जो व्यक्ति बाहर आया, उसका नाम था होरेशस।

"लेकिन नौजवान! तुम अकेले ही यह काम कैसे कर सकोगे?" प्रधानमंत्री ने पूछा।

"मुझे दो और आदमियों की जरूरत पड़ेगी, क्योंकि पुल पर एक साथ सिर्फ तीन ही सैनिक खड़े हो सकते हैं। हम तीनों पुल के एक किनारे पर खड़े होकर दुश्मनों को रोकेंगे और इधर आप लोग पुल काटेंगे।"

प्रधानमंत्री को होरेशस की योजना पसंद आई और उसने भीड़ के लोगों से चिल्लाकर पूछा—"रोम की रक्षा में और कौन-से दो लोग अपनी आहुति देंगे ?"

कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा। फिर एक आवाज आई—"मैं तैयार हूं !" यह व्यक्ति स्पूरियस था।

तीसरा बहादुर नवयुवक जो इस महानकार्य के लिए तैयार हुआ, वह हरमीनियस था।

तीनों अपने-अपने चमकते हुए भाले, कवच, खड्ग और अन्य शस्त्र लेकर पुल के किनारे पहुंच गए। रोम के निवासी अपनी-अपनी कुल्हाड़ियां लेकर लकड़ी का पुल तोड़ने के प्रयास में जुट गए।

थोड़ी ही देर बाद जैनिकुलम का किला टूटकर गिर गया और शत्रु सेना रोम में प्रवेश करने के लिए झपटी। शत्रु पक्ष के सेनापति को तब बड़ा आश्चर्य हुआ, जब उसने देखा कि सिर्फ तीन सैनिक उसकी विशाल सेना को रोकने के लिए खड़े हैं। थोड़ा और आगे बढ़ने पर उसे असली बात तब समझ में आई जब उसने देखा कि हजारों रोमवासी पुल को काटने की कोशिश कर रहे हैं। उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि पुल पर खड़े तीनों सैनिकों को शीघ्रातिशीघ्र मारकर पुल को टूटने से बचाएं।

तीन सैनिक आगे बढ़े। होरेशस और उसके साथियों के भाले चमके और शत्रु-सेना के तीनों सैनिक छटपटाते हुए जमीन पर गिर पड़े। छतों और दीवारों पर खड़ी रोम की जनता खुशी से चिल्लाने लगी और अपने बहादुर सैनिकों का हौसला बढ़ाने लगी।

एक बार फिर शत्रु-सेना के तीन सैनिक आगे बढ़े, पर होरेशस जान की बाजी लगाकर लड़ रहा था। एक सैनिक को उसने नदी में गिरा दिया और बाकी दोनों को भी मार गिराया। पुल के काटे जाने की वजह से पीछे चरमराहट का भारी शोर उठ रहा था। शत्रु-सेना के सेनापति की बौखलाहट बढ़ती जा रही थी, क्योंकि तब तक आधा पुल काटा जा चुका था।

रोम के निवासियों ने अपने बहादुर सैनिकों से कहा—"अब तुम लोग वापस लौट आओ, क्योंकि पुल टूटकर गिरने ही वाला है।"

हरमीनियस और स्पूरियस दौड़कर पुल के उस पार पहुंच गए। होरेशस अकेला बच गया था। लोगों ने चिल्लाकर कहा—"होरेशस ! तुम भी वापस आ जाओ। हम खतरे से बाहर हो चुके हैं !"

लेकिन होरेशस कहां मानने वाला था ? उसने जवाब दिया—"जब तक पुल का आखिरी टुकड़ा भी टूटकर नदी में नहीं गिर जाता, तब तक मैं यहां से नहीं हिलूंगा !"

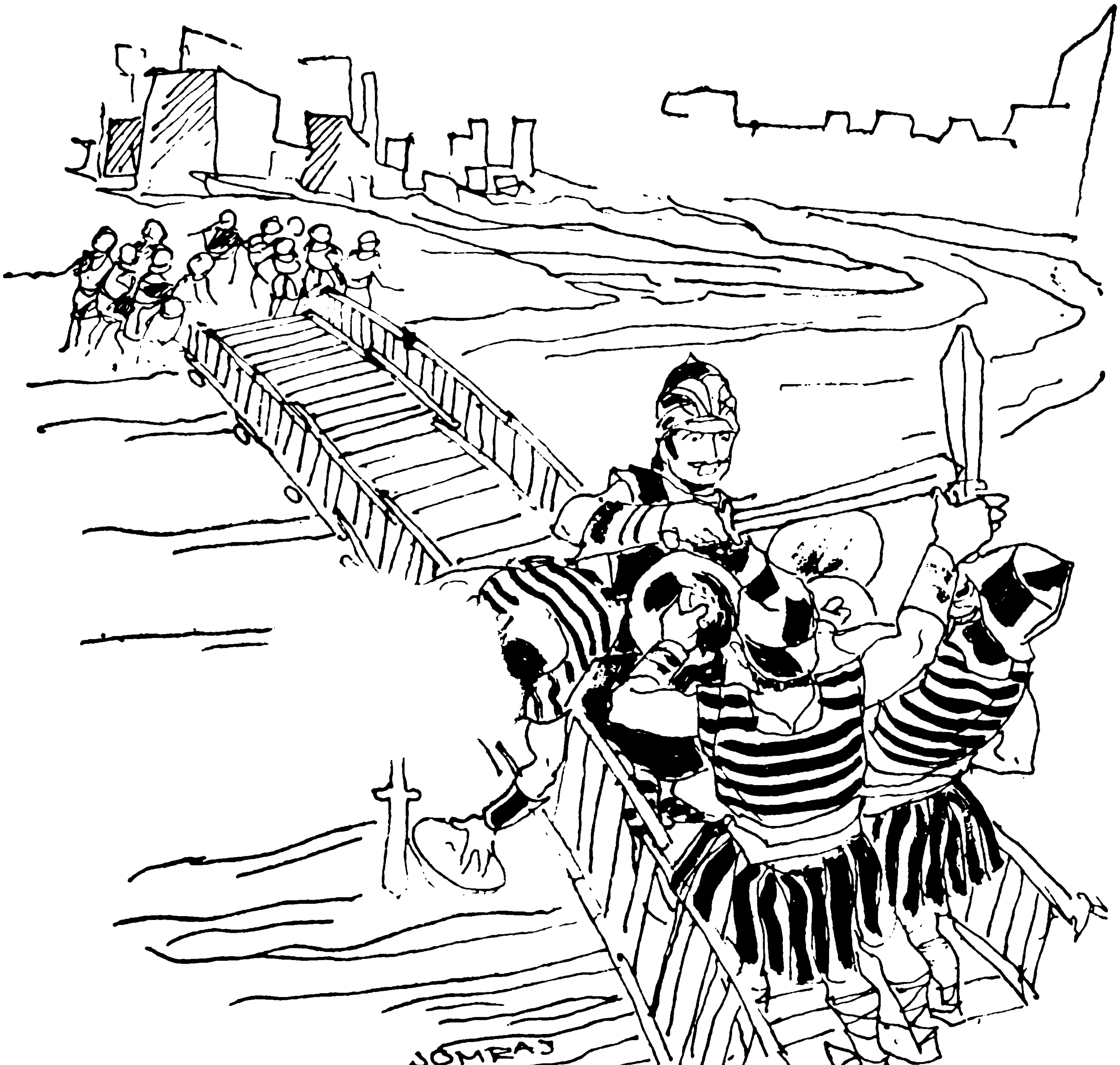

होरेशस अकेला ही दुश्मनों से जूझने लगा

अब वह अकेले ही तीन-तीन सैनिकों से एक साथ जूझ रहा था। शत्रुपक्ष का सेनापति होरेशस का पराक्रम देखकर दांतों तले उंगली दबाए हुए था। रोम के निवासी लगातार नारे लगा रहे थे—"होरेशस, जिंदाबाद ! होरेशस, जिंदाबाद !"

तभी एक भारी चरमराहट के साथ पुल टूटकर नदी में गिर पड़ा। यह देखकर होरेशस ने नदी में छलांग लगा दी। रोम के निवासी सांस रोककर प्रतीक्षा कर रहे थे। हजारों निगाहें आसमान की ओर थीं और होरेशस की जिंदगी की सलामती के लिए प्रार्थना कर रही थीं। यहां तक कि रोम के सेनापति ने भी उस बहादुर की प्राण-रक्षा के लिए प्रार्थना की। होरेशस के शरीर पर भारी लोहे का कवच था। उसे तैरने में तकलीफ हो रही थी। अचानक वह पानी में गुम हो गया। रोम के निवासी सशंकित हो उठे। क्या टाइबर ने रोम की रक्षा की कीमत वसूल कर ली? क्या रोम के रक्षक की रक्षा टाइबर नहीं करेगी?

तभी सबने देखा कि होरेशस नदी के किनारे पर बाहर आ गया है। लोगों की खुशियों का ठिकाना न रहा। उन्होंने होरेशस को कंधों पर उठा लिया और उसकी जय-जयकार करने लगे।

होरेशस ने अपने शौर्य से इतिहास बदल दिया था और आज भी उसे रोम के रक्षक के रूप में याद किया जाता है।

4. जब बत्तखों ने नगर को बचाया

प्राचीन नगर रोम पर अनेक बार संकट आए, लेकिन हर बार कोई न कोई उसकी रक्षा के लिए आ जाता था। एक बार इसी तरह रोम पर संकट आया। उस संकट की सूचना देते हुए रोम के एक गुप्तचर ने सैनिक छावनी में पहुंचकर कहा—"वे लोग राक्षसों की तरह भयानक हैं और बहुत तेजी से रोम की तरफ बढ़ते आ रहे हैं!" यह बात गुप्तचर ने लगभग हांफते हुए कही।

रोम के बाहर बने किले पर तैनात सैनिक सतर्क हो गए। कुछ ही दूरी पर भारी कोलाहल सुनाई पड़ रहा था।

"वे कौन लोग हैं?" प्रहरी ने तीखे स्वर में पूछा।

"वे संभवतः गॉल हैं।" गुप्तचर ने जवाब दिया।

गॉल लोग उस जगह के निवासी थे, जहां आज फ्रांस स्थित है।

इतना सुनना था कि किले के पहरेदार अस्त्र-शस्त्रों से लैस होकर शत्रु को रोकने के लिए आगे बढ़े। युद्ध छिड़ गया। परंतु खूंखार गॉल सैनिकों के सामने रोम के योद्धा टिक नहीं सके। गॉल लोगों ने उन्हें गाजर-मूली की तरह काटना शुरू कर दिया। अपनी जान बचाने के लिए कई सैनिक समीप ही बहने वाली टाइबर नदी में कूद पड़े।

रोम के पहरेदार तेजी से पीछे हटे और हड़बड़ी में किले के दरवाजे भी बंद करना भूल गए। पीछा करते हुए गॉल सैनिक जब रोम के करीब पहुंचे, तो दरवाजे खुले देखकर आश्चर्यचकित रह गए। वे समझ नहीं पाए कि अंदर प्रवेश करना ठीक होगा या नहीं, इसलिए वे ठिठककर खड़े हो गए।

"इसमें जरूर कोई-न-कोई चाल है, वरना किले के दरवाजे खुले क्यों रहते?" उनमें एक ने शंका प्रकट की।

"हमें सारी रात यहीं रुककर स्थिति का जायजा लेना चाहिए। उसके बाद कल मौका देखकर घुसेंगे।" दूसरे ने सुझाव दिया।

वे इस बात पर सहमत हो गए कि रात में किले के पास ही पड़ाव डालेंगे। उनके दिमाग में यह कतई नहीं आया कि रोमवासी हड़बड़ी में भूल से किले का दरवाजा खुला भी छोड़ सकते हैं। उन्होंने सोचा कि वे रोमवासी, जो अपनी बहादुरी के लिए इतने विख्यात हैं, भला ऐसी भूल कैसे कर सकते हैं? इसमें जरूर कोई साजिश है।

उधर रोम में खलबली मची हुई थी। रोम को कैसे बचाया जाए? किले के द्वार पर ही शक्तिशाली शत्रु का पड़ाव था। रोमवासी अपनी मौत को सामने देख रहे थे। रोम के

बड़े-बूढ़े लोगों ने मिलकर एक योजना तैयार की। तय हुआ कि सारे युवक कैपिटल किले में जाएंगे। कैपिटल किला बहुत ऊंची पहाड़ी पर स्थित था।

नवयुवक रात के अंधेरे का लाभ उठाकर कैपिटल किले में पहुंच गए। वे अपने साथ जितना ज्यादा सामान ले जा सकते थे, ले गए। नगर की स्त्रियां, बच्चे और सामान्य नागरिक भी आस-पास के गांवों को चले गए। रोम में बच गए सिर्फ बड़े-बूढ़े। उन लोगों ने रोम को छोड़कर जाना स्वीकार नहीं किया। वे वहां की मिट्टी से प्यार करते थे और उसी में दफन भी होना चाहते थे।

दूसरे दिन सुबह-सवेरे शत्रु-सेना ने रोम में प्रवेश किया। भीतर जाकर शत्रु सैनिक पुनः आश्चर्यचकित रह गए। सारा शहर सूना पड़ा था। उन्होंने सोचा था कि नगर में प्रवेश करते ही संघर्ष का सामना करना पड़ेगा, पर यहां तो सड़कें और मकान वीरान पड़े थे। चारों ओर एक मरघटी सन्नाटा छाया हुआ था। जानवरों की आवाजें कभी-कभी उस सन्नाटे को तोड़ देती थीं। गॉल सैनिक आश्चर्य में डूबे हुए, सूनी सड़कें पार करके रोम के महल में पहुंचे। अंदर एक बड़ा विचित्र दृश्य उपस्थित था। बहुत सारे बूढ़े लोग भव्य वेशभूषा में, रत्नजटित कुर्सियों पर बैठे थे। गॉल सैनिकों ने सोचा कि ये जरूर देवता होंगे। वे देवता हैं या नहीं—यह पता लगाने के लिए एक सैनिक ने एक बूढ़े की लम्बी-सफेद दाढ़ी को छुआ। इस पर बूढ़ा नाराज हो गया और अपनी तलवार भांजने लगा। थोड़ी ही देर बाद सारे बूढ़ों की लाशें जमीन पर बिखरती चली गईं।

बूढ़ों की हत्या के बाद उन्होंने निश्चिंत होकर रोम को लूटा और इमारतों को जला दिया। सारा रोम धू-धूकर जल उठा। आस-पास के गांवों में छिपे नागरिक सम्पत्ति और शहर को जलता हुआ देखते रहे। वे असहाय थे। गॉल सैनिक सिर्फ इतने से ही संतुष्ट न हुए। वे कैपिटल किले को पाने के लिए उतावले थे। उन्होंने उस सीधी पहाड़ी पर चढ़ाई शुरू की और कठिन परिश्रम के बाद किले के पास पहुंचने में सफल हो गए। रोम के नवयुवक तैयार बैठे थे। उन्होंने गॉल सैनिकों पर जबर्दस्त हमला किया। ऊंचाई पर होने के कारण वे बेहतर स्थिति में थे और गॉल लोग थके होने की वजह से उनका ठीक से मुकाबला नहीं कर पाए। हारकर उन्हें नीचे लौट जाना पड़ा।

गॉल सैनिकों ने पहाड़ी के नीचे अपना घेरा डाल दिया। कैपिटल किले में खाद्य सामग्री बहुत कम थी। धीरे-धीरे यह स्थिति आ गई कि सैनिकों को भूखा रहना पड़ता। किले में यदि भरपेट भोजन मिलता था, तो सिर्फ बत्तखों को। वे बत्तखें बहुत पवित्र मानी जाती थीं, क्योंकि रोमवासी उन्हें किसी देवी का वाहन मानते थे। सैनिक खुद भूखे रह जाते थे, पर उन बत्तखों को अवश्य खिलाते थे।

रोम के नवयुवक गॉल सैनिकों पर टूट पड़े

एक दिन की बात है। रोम का एक गुप्तचर टाइबर नदी में तैरता हुआ आया और सबकी नजरों से बचते हुए एक गुप्त मार्ग से पहाड़ी पर चढ़ने लगा। एक गॉल सैनिक की नजर उस पर पड़ गई। वह उसका पीछा करने लगा। लौटकर उसने अपने सेनापति को उस गुप्त मार्ग की जानकारी दी। सेनापति की आंखें खुशी से चमक उठीं और वह उत्साहित स्वर में बोल

उठा—"अब देखते हैं, इन रोमवासियों को बचाने कौन आता है ? आधी रात के समय जब वे गहरी नींद में सो रहे होंगे, तो हम गुप्त मार्ग से किले के अंदर पहुंचेंगे और उन पर हमला कर देंगे।"

आधी रात का समय था। हर तरफ गहरा अंधेरा छाया हुआ था। गॉल सैनिक शस्त्रों से लैस होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे, बिना आवाज किए...अत्यंत सावधानीपूर्वक। नपे-तुले कदमों से बढ़ते हुए वे किले की दीवार तक आ पहुंचे। किले के अंदर पहुंचने के लिए सैनिक पिरामिड के आकार में एकत्र होने लगे। सबसे नीचे दस सैनिक खड़े हुए, उसके ऊपर नौ सैनिक और इसी प्रकार वे किले की दीवार के सहारे ऊपर चढ़ने लगे।

रोम का अंत बिल्कुल निकट था। वह रोम...जो सभ्यता और कला का केन्द्र था और जिसकी उपलब्धियों के आगे सारा विश्व नतमस्तक था, वही आज एक बर्बर और आततायी जाति द्वारा पूरी तरह उजाड़ दिया जाने वाला था। कौन बचा सकता था रोम को ?

किले के बुर्ज पर बत्तखें बैठी थीं। वे बत्तखें, जो रोमवासियों की श्रद्धा की पात्र थीं और जिन्हें रोम के लोगों ने खुद भूखे रहकर दाना खिलाया था। बत्तखों ने रात के समय कुछ लोगों को चोरों की तरह छिपकर किले पर चढने की कोशिश करते देखा, तो उन्हें आशंका हुई। रोम के सिपाहियों को आगाह करने के लिए उन्होंने एक साथ अपने पंख फड़फड़ाने शुरू कर दिए और मुंह से भी आवाजें निकालने लगीं। वे उड़-उड़कर किले के पहरेदारों को जगाने की कोशिश करने लगीं। आखिर उनकी तेज फड़फड़ाहट और आवाजें सुनकर पहरेदार जाग गए। किसी भयंकर आशंका से उनका मन कांप उठा।

एक पहरेदार ने किले की दीवार पर जाकर देखा—गॉल सैनिक ऊपर पहुंचने ही वाले थे। उसने अपने लम्बे भाले से दो-तीन सैनिकों को मार गिराया। दूसरे पहरेदार भी अपने-अपने भाले लेकर दीवार पर आकर डट गए। कुछ पहरेदारों ने जाकर अन्य सैनिकों को भी जगा दिया। अब तो गॉल सैनिकों की जान पर बन आई। देखते-ही-देखते पासा पलट गया। अधिकांश गॉल सैनिक मारे गए। बाकी अपनी जान बचाकर भाग गए।

इस तरह रोम उजड़ने से बच गया और उसे बचाने का श्रेय था उन बत्तखों को।

5. वीरता का सम्मान

लगभग ढाई हजार वर्ष पहले भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। उस समय तक्षशिला (गांधार) के शासक आम्भि, केकय के शासक पुरु तथा मगध के शासक महानंद विशेष रूप से विख्यात थे।

उन्हीं दिनों यूनान के शासक सिकंदर की आंखों में विश्व-विजेता बनने का सपना पल रहा था। इस सपने को सच में बदलने के लिए सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया। सबसे पहले उसने तक्षशिला के शासक आम्भि को परास्त करके अपने अधीन किया। इसके बाद वह केकय प्रदेश की ओर बढ़ा।

केकय पर आक्रमण की सूचना पाकर वहां के मंत्रणागृह में राजा पुरु, आचार्य इंद्रदत्त तथा सेनापति व्याघ्रपाद विचार-विमर्श करने के लिए एकत्रित हुए। आचार्य इंद्रदत्त चिंतित एवं गम्भीर मुद्रा में बैठे थे। कुछ देर तक चुप रहने के बाद बोले—"तो गांधार जनपद के कायर आम्भि ने यवनराज सिकंदर के आगे आत्मसमर्पण कर ही दिया!"

सेनापति व्याघ्रपाद बोले—"हां, आचार्य! गांधार के लोगों में अपना स्वाभिमान शेष नहीं बचा है। लगता है, अब वे अपने वैभव तथा विलासी जीवन से पूरी तरह संतुष्ट हो गए हैं। उनका मानना है कि यवन सेना एक आंधी की तरह आई है और आंधी की ही तरह लौट जाएगी। इसलिए उनकी अधीनता स्वीकार कर लेने में कोई हानि नहीं है!"

"यह उनकी भूल है, सेनापति! सारी पृथ्वी पर ऐसा सुंदर और हरा-भरा देश कोई दूसरा नहीं है। यहां के सोना उगलते खेत और दूध से भरी नदियां छोड़कर वे स्वयं अपने देश को लौट जाएंगे, यह समझना बहुत बड़ी भूल है, व्याघ्रपाद!" लम्बी सांस लेकर आचार्य बोले—"खैर...! आपकी सेनाओं की क्या स्थिति है?"

सेनापति व्याघ्रपाद ने उत्तर दिया—"आचार्य, केकय के सैनिक युद्ध के लिए उतावले हो रहे हैं। बहुत दिनों से उन्हें अपनी तलवार का कौशल दिखाने का अवसर नहीं मिला है। यवनों के रक्त का पान करने के लिए हमारे सैनिकों की तलवारें तुरंत आक्रमण करेंगी!"

राजा पुरु आचार्य और सेनापति की बातें तो सुन रहे थे, किंतु मन-ही-मन कुछ सोच भी रहे थे। उनकी आंखें अधखुली-सी थीं और माथे पर बल पड़े हुए थे। उन्हें मालूम था कि केवल उत्साह और उमंग से युद्ध नहीं जीता जा सकता। यवनराज की व्यूह-रचना अद्भुत है। उनके सैनिक तीस हाथ लम्बे बरछे का प्रयोग करते हैं, जिसे तोड़कर केकय के सैनिकों का उन तक पहुंचना आसान नहीं है। ऐसी स्थिति में तलवार क्या काम करेगी? पुरु यह

सोच ही रहे थे कि द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि यवनराज सिकंदर के दूत केकयराज पुरु से भेंट करना चाहते हैं। आचार्य ने दूत को मंत्रणागृह में लाने का आदेश दिया।

कुछ समय बाद सिकंदर के दूत दो दंडपालों के साथ मंत्रणागृह में उपस्थित हुए। उन्होंने सिर झुकाकर महाराज पुरु को प्रणाम किया। पुरु का आदेश पाकर एक दूत ने कहा—"महाराज! हमें यवनराज ने आपकी सेवा में भेजा है। यवनराज का संदेश है कि गांधारराज आम्भि के समान आप भी यवनराज की अधीनता स्वीकार कर लें।"

यवनदूत अभी बोल ही रहा था कि व्याघ्रपाद ने रोष में आकर अपनी तलवार खींच ली। पर उनका हाथ पकड़कर आचार्य इंद्रदत्त बोले—"सेनापति! यह मत भूलो कि दूत का वध नहीं किया जाता।"

"मुझे क्षमा करें, आचार्य! यवनदूत की ये अपमानजनक बातें सुनकर मैं असंतुलित हो गया था।" व्याघ्रपाद बोले।

यवनराज का संदेश सुनकर महाराज पुरु ने गंभीरतापूर्वक कहा—"दूत, यवनराज से जाकर कह देना कि मैं उनसे वितस्ता नदी के तट पर लड़ाई के मैदान में भेंट करूंगा।"

दूत सिर झुकाकर मंत्रणागृह से चले गए। उनके जाने के बाद आचार्य इंद्रदत्त बोले—"सेनापति व्याघ्रपाद! अब देर करना उचित नहीं है। जाओ, अपनी सेना को तैयार करो। जिस दिन के लिए माताएं अपने पुत्रों को जन्म देती हैं, वह दिन अब आ गया है।"

केकय के लोग यवनराज सिकंदर के आक्रमण से अपनी रक्षा के लिए पूरी तरह तैयार थे। उनमें अपूर्व उत्साह था। कुछ दिनों तक तक्षशिला में विश्राम करके सिकंदर की सेना वितस्ता के पश्चिमी तट पर आ पहुंची। यवन सेना के सामने समस्या थी कि वितस्ता नदी को कैसे पार किया जाए, क्योंकि सामने नदी के दूसरे तट पर केकय की सेना तैयार खड़ी थी। सिकंदर के सामने अजीब परेशानी थी।

वर्षा ऋतु भी आरम्भ हो चुकी थी। चारों ओर काली घटाएं घिरने लगी थीं। सिकंदर बेचैन हो उठा। एक रात गुप्तचरों ने आकर बताया कि लगभग बीस मील उत्तर की ओर वितस्ता के बीच में एक द्वीप है, जिसके कारण नदी दो धाराओं में बंट गई है। पश्चिम दिशा की धारा गहरी और चौड़ी है, लेकिन पूर्व दिशा की धारा का जल अधिक गहरा नहीं है। यहां से नदी को पार किया जा सकता है।

सिकंदर चतुर सेनापति था। उसने अपनी सेना की एक टुकड़ी को आदेश दिया कि वह अपने स्कंधावार के सामने इस ढंग से कार्यवाही करे, जिससे केकय की सेना यह समझे कि यवन सेना यहीं से नदी पार करने का प्रयत्न कर रही है। वह स्वयं एक दूसरी सेना को लेकर उत्तर की ओर चल पड़ा।

सेनापति व्याघ्रपाद को जैसे ही अपने गुप्तचरों से यह सूचना मिली कि यवन सेना सामने से नदी पार कर रही है, वह युद्ध के लिए तैयार हो गया। इसी बीच सिकंदर की सेना ने अवसर पाकर वितस्ता को उस जगह से पार कर लिया, जहां नदी दो धाराओं में विभक्त होती थी। नदी पार करके यवन सेना ने केकय की सेना पर धावा बोल दिया। इस अचानक

पुरु के स्वाभिमान को देखकर सिकंदर विह्वल हो उठा

हमले से व्याघ्रपाद घबरा गया। लेकिन वह निराश नहीं हुआ। महाराज पुरु स्वयं एक हाथी पर बैठकर युद्ध का संचालन कर रहे थे। घमासान युद्ध हुआ। पर यवन सेना के मुकाबले में केकय की सेना कम थी। फिर आम्भि भी गांधार की सेना को साथ लेकर इस युद्ध में सिकंदर की ओर से लड़ रहा था। पुरु, आम्भि को एक बार पराजित कर चुका था, और आम्भि अपनी उस पराजय का बदला लेना चाहता था। उस समय आम्भि की एक ही इच्छा थी कि वह स्वयं पुरु पर आघात करे। पुरु दिन-भर युद्ध करते-करते थक गए थे। शत्रु के बरछों और तीरों से उनका शरीर छलनी-छलनी हो रहा था। तभी आम्भि घोड़ा दौड़ाता हुआ पुरु के करीब आ पहुंचा। पुरु ने हिम्मत नहीं हारी। घायल हाथ से उन्होंने आम्भि पर बरछा फेंका, पर आम्भि बच गया। इसी समय पुरु को यवन सैनिकों ने घेर लिया और बंदी बना लिया। केकय की सेना परास्त हो गई।

घायल केकयराज को सिकंदर के सामने पेश किया गया। सिकंदर जहां स्वयं वीर था, वहीं वीरों का सम्मान भी करना जानता था। उसने अनेक लड़ाइयां लड़ी थीं, लेकिन ऐसी भयंकर लड़ाई उसने कभी नहीं लड़ी। केकय जैसे छोटे-से राज्य का शासक इतनी वीरता से उसके साथ लड़ेगा, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। पुरु के पहुंचते ही सिकंदर उस वीर के सम्मान में उठकर खड़ा हो गया और उसे अपने सामने बिठाया।

दो महान वीर आमने-सामने बैठे हुए थे। यवन सेना यह दृश्य देखकर रोमांचित हो रही थी। सैनिकों के मन में पुरु के प्रति आदर-भाव उमड़ रहा था।

सिकंदर ने पुरु से प्रश्न किया—"कहिए केकयराज ! आपके साथ कैसा व्यवहार किया जाए ?"

पुरु एकाएक खड़ा हो गया और बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ किया करता है, यवनराज !"

यह सुनते ही सिकंदर विह्वल हो उठा। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि कोई ऐसा उत्तर भी दे सकता है ! सामान्य स्थिति में इस तरह का साहस दिखाना तो संभव है, लेकिन यह व्यक्ति बंदी होकर भी साहस दिखा रहा है ! ऐसा व्यक्ति सचमुच महान है। सिकंदर पुरु की महानता के आगे नतमस्तक हो रहा था। वह उठा और पुरु को गले से लगाते हुए बोला—"आप सचमुच वीर हैं, केकयराज ! मैं आपके साथ एक वीर राजा के समान व्यवहार करूंगा।"

सिकंदर ने पुरु को मुक्त कर दिया और एक राजा की ही तरह उन्हें सम्मानित करते हुए अनेक उपहार भेंट किए।

6. मत चूकै चौहान

लगभग आठ सौ वर्ष पुरानी बात है। तब दिल्ली में प्रसिद्ध राजा अनंगपाल का शासन था।

एक बार राजा अनंगपाल और कन्नौज के राजा विजयपाल में जमकर लड़ाई हुई। इस लड़ाई में अजमेर के राजा सोमेश्वर ने अनंगपाल की सहायता की। सोमेश्वर की सहायता से अनंगपाल ने विजयपाल को हरा दिया। इस जीत से अनंगपाल की नजरों में सोमेश्वर का सम्मान बढ़ गया। वह सोमेश्वर को दिल्ली ले आया और उसने उससे अपनी कन्या का विवाह कर दिया। इसके साथ-साथ उसने अपनी दूसरी कन्या का विवाह विजयपाल के साथ कर दिया।

कुछ समय बाद सोमेश्वर के यहां पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम रखा गया—पृथ्वीराज। पृथ्वीराज के जन्म पर उसके नाना अनंगपाल ने बहुत खुशी मनाई। इधर विजयपाल के भी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम जयचंद रखा गया। इस प्रकार पृथ्वीराज और जयचंद दोनों ही अनंगपाल के नाती थे।

अनंगपाल पृथ्वीराज को अधिक प्यार करता था, क्योंकि वह वीर राजा सोमेश्वर का पुत्र था। पृथ्वीराज भी अपनी वीरता और सद्‌गुणों से अपने पिता सोमेश्वर और नाना अनंगपाल को प्रसन्न कर रहा था। उधर जयचंद अपनी मूर्खता और उद्‌दंडता की वजह से अपने नाना अनंगपाल को बिलकुल भी नहीं भाता था।

राजकुमार पृथ्वीराज बचपन से ही तीर चलाने में निपुण था। वह आंखों पर पट्टी बांधकर शब्दभेदी बाण चला सकता था। उसका निशाना अचूक था। उसे तलवार और भाला चलाने में भी महारत हासिल थी। बलशाली तो वह था ही। जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया, उसका साहस और पराक्रम भी बढ़ता गया। देखते-देखते उसकी वीरता की कहानियां चारों तरफ फैल गईं। बारह वर्ष की आयु में उसे युवराज-पद दे दिया गया। युवराज बन-कर वह राज-परिषद में भी भाग लेने लगा और राजनीति सीखने लगा।

उन दिनों भारतवर्ष के वैभव के बारे में जानकर विदेशी लोग यहां का माल लूटने के लिए बार-बार आक्रमण किया करते थे। इन्हीं आक्रमणकारियों में से एक मुहम्मद गोरी था।

सिंधु नदी के किनारे एक छोटे से राज्य में चित्ररेखा नाम की एक वेश्या रहती थी। मुहम्मद गोरी ने उस वेश्या को प्राप्त करने के लिए राज्य पर चढ़ाई कर दी। राजा ने घबरा-कर उस वेश्या को गोरी के हवाले कर दिया और स्वयं उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

चित्ररेखा मुहम्मद गोरी के चचेरे भाई मीर हुसैन पर आसक्त हो गई। मीर हुसैन भी चित्ररेखा से प्यार करता था, किंतु उसे मुहम्मद गोरी से डर लगता था। फलस्वरूप, वह चित्ररेखा को लेकर पृथ्वीराज के दरबार में चला आया। पृथ्वीराज ने उसे अपने यहां शरण दे दी ! जब मुहम्मद गोरी को इस बात का पता चला, तो उसने पृथ्वीराज को कहलवा भेजा कि यदि मीर हुसैन चित्ररेखा को वापस कर दे, तो उसका अपराध क्षमा कर दिया जाएगा। अन्यथा पृथ्वीराज को भी वह अपना शत्रु मान लेगा।

यह सुनकर पृथ्वीराज को बहुत क्रोध आया और उसने मुहम्मद गोरी की मांग ठुकरा दी। इस पर मुहम्मद गोरी ने नौ हजार सैनिकों की सेना लेकर पृथ्वीराज पर चढ़ाई कर दी। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। मुहम्मद गोरी की सेना भाग खड़ी हुई। मुहम्मद गोरी के बहुत से सैनिक मारे गए और वह स्वयं गिरफ्तार कर लिया गया। इस युद्ध में उसका भाई मीर हुसैन भी मारा गया और चित्ररेखा उसके साथ ही दफन हो गई। पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी से यह वचन ले लिया कि वह फिर दुबारा चढ़ाई नहीं करेगा। इसके बाद मुहम्मद गोरी को छोड़ दिया गया।

इस तरह पृथ्वीराज ने अपने शत्रु मुहम्मद गोरी को नीचा दिखाया, किंतु मुहम्मद गोरी इस अपमान का बदला लेने के लिए बेचैन हो उठा।

इस बीच राजा अनंगपाल ने अपना राज्य पृथ्वीराज को दे दिया और स्वयं अपनी पत्नी के साथ हिमालय पर्वत पर तपस्या करने चला गया। उधर मुहम्मद गोरी अपमान की ज्वाला में जल रहा था। वह अपने शत्रु का बल बढ़ता हुआ न देख सका। उसने पृथ्वीराज को हराने की ठान ली थी और इसके लिए वह बार-बार उस पर आक्रमण करता, पर पृथ्वीराज के शौर्य और पराक्रम के आगे उसकी एक न चल पाती।

यह देखकर मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज के विरुद्ध एक कुटिल योजना बनाई। उसने दिल्ली के दो-तीन लोगों को अपने साथ मिला लिया, जो उसके लिए गुप्तचरी करने लगे। ये लोग मुहम्मद गोरी के कहने पर राजा अनंगपाल से मिलने गए और उससे बोले, "महाराज ! जब से आप दिल्ली का राज्य पृथ्वीराज को सौंपकर यहां आए हैं, तब से सारी प्रजा की दशा बिगड़ती जा रही है। हमारी कोई सुरक्षा नहीं, सब लोग आपको कोसते हैं।"

यह सुनकर अनंगपाल को गुस्सा आ गया और उसने पृथ्वीराज को कहलवा भेजा कि वह उसका राज्य वापस कर दे। लेकिन पृथ्वीराज ने राज्य वापस देने से इंकार कर दिया। इधर मुहम्मद गोरी ने अपने दूतों के माध्यम से अनंगपाल के पास धन भिजवा दिया और पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने के लिए उसे प्रेरित किया।

अनंगपाल और मुहम्मद गोरी की सेना ने मिलकर पृथ्वीराज पर चढ़ाई कर दी। घमासान युद्ध के बाद अनंगपाल और मुहम्मद गोरी गिरफ्तार कर लिए गए। मुहम्मद गोरी को

दो लाख रुपये, सौ घोड़े और बीस हाथी का हर्जाना लेकर छोड़ दिया गया। अपने नाना अनंगपाल को पृथ्वीराज ने ससम्मान एक वर्ष तक अपने यहां रखा और उनकी इच्छा के अनुसार आदर सहित पुनः हरिद्वार भेज दिया।

पृथ्वीराज की वीरता की कहानियां अब हर आदमी की जबान पर थीं। यह सब सुन-कर पृथ्वीराज का मौसेरा भाई जयचंद तिलमिला उठा। उसने पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिए उस पर चढ़ाई कर दी। परंतु पृथ्वीराज के पराक्रम के आगे वह टिक न सका और और भाग खड़ा हुआ। कुछ दिनों बाद उसने राजसूय यज्ञ किया, जिसमें पृथ्वीराज को भी निमंत्रण भेजा गया और यह सूचना भी दी गई कि उसे यज्ञ में द्वारपाल का काम करना होगा।

पृथ्वीराज को यह निमंत्रण अपमानजनक प्रतीत हुआ। उसने इस अपमान का बदला लेने की ठान ली और निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया। जयचंद ने पृथ्वीराज की मिट्टी की मूर्ति बनवाई और द्वार पर रख दी। यज्ञ के साथ-साथ उसने अपनी पुत्री संयोगिता का स्वयंवर भी रच डाला।

संयोगिता ने पृथ्वीराज की वीरता की अनेक कहानियां सुनी थीं और वह उसकी वीरता पर मुग्ध भी थी। उसने पृथ्वीराज की मिट्टी की मूर्ति के गले में वरमाला डाल दी। वहीं छिपकर बैठे पृथ्वीराज ने यह देख लिया। उसने संयोगिता को पकड़कर अपने घोड़े पर बैठा लिया और सरपट दौड़ पड़ा। जयचंद की सेना भी पीछे-पीछे दौड़ पड़ी। घमासान युद्ध हुआ और पृथ्वीराज की सेना ने जयचंद की सेना के छक्के छुड़ा दिए।

पृथ्वीराज की वीरता देखकर जयचंद बहुत खुश हुआ। उसने पृथ्वीराज के साथ संयोगिता का विधिवत विवाह कर दिया।

जयचंद से हुई लड़ाई ने पृथ्वीराज को पंगु बना दिया। वह हर समय संयोगिता के साथ अपने महल में ही भोग-विलास में लिप्त रहता और कभी महल से बाहर नहीं आता था। वह संयोगिता के रूप पर इतना मुग्ध हो गया कि प्रजा के सुख-दुख का कोई ध्यान नहीं रखता था। संयोगिता भी उसे अपनी ओर अधिक-से-अधिक आकर्षित करने में लगी रहती। परिणाम यह हुआ कि प्रजा परेशान रहने लगी।

मुहम्मद गोरी के गुप्तचर उसे यह सब सूचनाएं भिजवाते रहते। मौका पाकर उसने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। पृथ्वीराज को जब इसका पता चला, तो वह चिंतित हो उठा। अब उसमें न वह पराक्रम रह गया था और न वैसा रण कौशल ही। उसके सेनापति कैमास और चामुंडराय भी अब जीवित नहीं रह गए थे। केवल चंदवरदाई ही बचा था। फिर भी पृथ्वी-राज ने साहस नहीं छोड़ा और अपनी सेना लेकर मुहम्मद गोरी से टक्कर लेने युद्ध के मैदान में पहुंच गया।

पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी युद्ध करते हुए

इस युद्ध में पृथ्वीराज की सहायता चित्तौड़ नरेश ने भी की थी, किंतु वह भी कुछ न कर सके और वीरगति को प्राप्त हुए। चित्तौड़ नरेश की मृत्यु के बाद पृथ्वीराज का हौसला

पस्त हो गया। उसकी आधी से अधिक सेना मारी जा चुकी थी और एक दिन वह खुद बंदी बना लिया गया। पृथ्वीराज और चंदवरदाई को बंदी बनाकर गजनी भेज दिया गया।

दिल्ली को लूटकर जब मुहम्मद गौरी गजनी पहुंचा, तो जीत के नशे में उसने वहां एक बहुत बड़ा जश्न मनाया। एक बहुत बड़ा दरबार लगा, जिसमें पृथ्वीराज और चंदवरदाई को बंदी के रूप में सामने लाया गया। मुहम्मद गौरी ने भरे दरबार में पृथ्वीराज को मृत्युदंड की सजा सुनाई। पूरा दरबार तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। पृथ्वीराज मन मसोसकर रह गया। उसने सोचा कि मैंने इस दुष्ट को सत्रह बार गिरफ्तार किया और हर बार छोड़ दिया और यह दुष्ट मुझे पहली बार ही गिरफ्तार करके मृत्युदंड दे रहा है। इससे ज्यादा अपमान और क्या हो सकता है? इससे तो अच्छा था कि मैं युद्ध के मैदान में लड़ता-लड़ता मारा जाता। पृथ्वीराज का साथी चंदवरदाई भी मृत्युदंड की सजा सुनकर भीतर-ही-भीतर क्षुब्ध हो उठा। चंदवरदाई कवि था और बहुत चतुर भी था। उसने सोचा कि ऐसे दुष्ट को कुछ-न-कुछ मजा अवश्य चखाना चाहिए। चंदवरदाई बोला—"जहांपनाह! हमें आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन मरने से पहले मेरी इच्छा है कि आप राजा पृथ्वीराज का कुछ करिश्मा ही देख लें।"

"करिश्मा!—कैसा करिश्मा।" मुहम्मद गौरी चौंककर बोला।

"बंदापरवर! राजा पृथ्वीराज एक अचूक निशानेबाज हैं। वह अपनी आंखों पर पट्टी बांधकर भी ठीक निशाने पर तीर चला सकते हैं। उन्हें जहां निशाना लगाने को कहा जाएगा, वहीं वह आंखों पर पट्टी बांधे-बांधे ही निशाना मार देंगे।" चंदवरदाई बोला।

"अच्छा! ऐसा है! यह कमाल तो हम देखना चाहेंगे।" मुहम्मद गौरी ने अचरज प्रकट करते हुए कहा।

पृथ्वीराज की आंखों पर पट्टी बांध दी गई और एक मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसकी आंख में तीर मारने के लिए कहा गया। चंदवरदाई ने देखा कि मुहम्मद गौरी बहुत ऊंचे सिंहासन पर बैठा है और यह तमाशा देखने के लिए उतावला हो रहा है। उसने अंदाज लगाया और पृथ्वीराज के कानों में कविता रूप में कहा—

"चार बांस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण।
ताहू पर सुलतान है, मत चूके चौहान।"

यह सुनना था कि धनुर्विद्या में पारंगत पृथ्वीराज चौहान ने तीर चलाया और एक ही तीर से मुहम्मद गौरी का सिर धड़ से अलग कर दिया। मुहम्मद गौरी को मरा देखकर दरबारियों में भगदड़ मच गयी और वे पृथ्वीराज और चंदवरदाई को मारने के लिए लपके। पर तब तक पृथ्वीराज ने एक तीर से चंदवरदाई को और एक तीर से स्वयं को मारकर वीरगति प्राप्त कर ली।

7. बादशाह—दो दिन का

अब से लगभग साढ़े चार सौ साल पहले देश में मुगल बादशाह हुमायूं का शासन था। हुमायूं के ही शासन-काल में एक भिश्ती दो दिन के लिए इतनी बड़ी सल्तनत का बादशाह बना था। यह सुनकर अजीब लग सकता है, पर यह सचाई है कि हमारे देश पर दो दिन के लिए एक भिश्ती ने शासन किया। यह बादशाह हुमायूं की किसी सनक का नतीजा नहीं था, बल्कि अहसान का बदला चुकाने का एक बेमिसाल नमूना था। दरअसल, उस भिश्ती ने बादशाह हुमायूं को मौत के हाथों से बचाया था और इसके बदले में हुमायूं ने उसे दो दिन के लिए अपनी गद्दी ही सौंप दी थी।

घटना अप्रैल 1538 की है। तब हुमायूं की राजधानी आगरा में थी। आगरा में वह बड़े आराम से राज कर रहा था। तभी उसे सूचना दी गई कि बंगाल प्रांत में लुटेरा शासक शेरशाह उपद्रव कर रहा था। शेरशाह, जिसका वास्तविक नाम शेर खां था, पठान वंश का था। वह बहुत क्रूर था। उसने लूटपाट करके बंगाल में मालदा की राजधानी गौड़ पर कब्जा कर लिया था।

गौड़ पर शेरशाह के कब्जे की खबर सुनकर हुमायूं अपनी सेना लेकर बंगाल की तरफ चल दिया। हुमायूं की सेना तेजी से मालदा की ओर बढ़ रही थी। तभी शेरशाह को शाही सेना के कूच की खबर मिली। वह सतर्क हो गया। उसने अपने कुछ साथी बिहार भेज दिए। उन्होंने बिहार पहुंचकर शाही सेना के आगे बढ़ने में अनेक रुकावटें पैदा कीं। शेरशाह ने शाही सेना के मार्ग में बाधा डालने के लिए अपने साथियों को इस उद्देश्य से भेजा था, ताकि उसे लूटपाट के लिए समय मिल जाए। इस तरह शाही सेना कई दिन तक उन रुकावटों में उलझी रही और मालदा पहुंचने में उसे काफी देर लगी। इस दौरान शेरशाह ने गौड़ का सारा खजाना खाली कर लिया और दूसरे रास्ते से भाग गया।

शाही सेना जब गौड़ पहुंची, तो उसे खाली खजाना और उजड़ा हुआ शहर मिला। शाही सेना यह सब देखकर दंग रह गई।

हुमायूं पहले तो इस बात से चकित हुआ कि इतना प्रसिद्ध योद्धा शेरशाह बिना युद्ध किए चुपचाप कैसे खिसक गया, पर जब उसे सारा शाही खजाना खाली मिला, तो वह लुटेरे शेर खां को कोसता हुआ मन-ही-मन झुंझलाकर रह गया।

हुमायूं नौ माह तक गौड़ में रहा। इस बीच उसने शाही खजाने को पुनः सम्पन्न किया और अनेक उत्सव मनाए।

किंतु इस दौरान शेरशाह ने मुगल राजधानी आगरा से मुगल बादशाह हुमायूं तथा उसकी सेना के तमाम सम्पर्क काट दिए और देश के अनेक भागों में उपद्रव किए। वह हमले करता रहा और लूटपाट मचाता रहा। हुमायूं और उसकी सेना को उसने अपनी इन कार-गुजारियों की भनक तक नहीं पड़ने दी।

नौ माह के बाद हुमायूं ने अंततः आगरा वापस जाने का निश्चय किया। नौ माह की अवधि में शाही सेना भोग-विलास में लिप्त रहने के कारण शक्तिहीन हो चली थी। सैनिकों की अशक्तता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जब वे बिहार में, बक्सर के निकट चौसा में, गंगा नदी पार करने की कोशिश कर रहे थे, तो शेरशाह उन्हें परेशान करने में कामयाब हो गया। सन् 1539 के जून माह के आरम्भ में एक दिन सुबह-सुबह अफगान गुरिल्लों ने मुगल सेना पर हमला कर दिया और शाही साज-सामान, खजाने और हरम पर कब्जा कर लिया। मुगल फौज देखती ही रह गई।

हुमायूं बुरी तरह घायल हो गया था। उसका घोड़ा भी जख्मी हुआ। हुमायूं ने अपने घोड़े के साथ जैसे ही नदी में छलांग लगाई, वैसे ही वह घोड़ा हुमायूं के नीचे दबकर मर गया। हुमायूं भी तैर नहीं सका और अपने शरीर पर लदे भारी जिरहबख्तर तथा हथियारों के बोझ के कारण नदी में डूबने लगा। उसने सहायता के लिए आवाज लगाई, लेकिन युद्ध के घोष, बंदूकों की दनदनाहट, घायल सिपाहियों की चीख-पुकार और हताहत घोड़ों, हाथियों के आर्तनाद के बीच हुमायूं की गुहार दबकर रह गई।

ठीक इसी वक्त पानी ढोने वाला एक भिश्ती उधर से गुजरा। वह शाही फौज की सेवा के लिए उनके साथ-साथ चल रहा था। उसने अपने संकटग्रस्त बादशाह की कातर-पुकार सुनी। हुमायूं की आवाज सुनते ही वह सहायता के लिए दौड़ा। उसने अपनी मशक का पानी बिखेर दिया और खाली मशक में हवा भरकर उसे डाट से बंद कर दिया। हवा से फूली मशक पानी पर तैरने लायक हो गई थी। उसने मशक को पानी में डाला और उसके सहारे तैरता हुआ हुमायूं के पास गया। हुमायूं के पास पहुंचकर वह उसे अपनी मशक के सहारे खींचकर नदी से बाहर ले आया।

हुमायूं भिश्ती के इस उपकार से भाव-विह्वल हो उठा। उसकी आंखों में कृतज्ञता और आभार के भाव थे। वह गद्‌गद भाव से जान बचाने वाले उस भिश्ती को निहार रहा था। भिश्ती के इस अहसान के बदले वह सब कुछ देने को तैयार था। वह बोला—"बोलो, दोस्त! क्या मांगते हो? मैं तुम्हें मुंहमांगी चीज दे दूंगा।"

"शहंशाह! अल्लाह का शुक्र है कि आपकी जान बच गई। इससे ज्यादा यह नाचीज और क्या मांग सकता है? अपने बादशाह की सलामती मेरे लिए सबसे बड़ी नियामत है। आपकी सरपरस्ती रहे, यही मेरी पहली और आखिरी तमन्ना है।" कहते-कहते भिश्ती की आंखें भी नम हो गईं।

यह सुनकर बादशाह और भी भावुक हो गया। बोला—"ठीक है। अल्लाह से दुआ करो कि हमें हमारी गद्दी वापस मिल जाए। हम तुमसे वादा करते हैं कि तब हम तुम्हारी जिंदगी की कोई भी मुराद पूरी करेंगे।"

भिश्ती ने बादशाह हुमायूं को नदी में डूबने से बचाया

हुमायूं को गद्दी वापस मिल गई। वक्त बीतता रहा। हुमायूं अपना राज-काज चला रहा था और शाही ऐशो-आराम में दिन गुजार रहा था।

अचानक एक दिन उसे खबर मिली कि शेरशाह फिर सक्रिय हो गया है और हमला करने के लिए लखनऊ की तरफ कूच कर रहा है। हुमायूं परेशान हो उठा। उसने शेरशाह का मुकाबला करने के लिए तैयारी शुरू कर दी और ऐसे परेशानी के दिनों में ही वह भिश्ती उसके दरबार में उपस्थित हुआ। उसने बादशाह को सलाम किया।

"कहो, दोस्त ! कैसे आना हुआ ?" हुमायूं ने पूछा।

"शहंशाह ! खादिम की गुस्ताखी माफ की जाए।" भिश्ती बोला।

"हम तुम्हारे सो खून माफ कर सकते हैं। हमें याद है कि हम तुम्हारी मुंहमांगी मुराद पूरी करने का वादा कर चुके हैं।" हुमायूं ने उस पर स्नेह भरी दृष्टि डालते हुए कहा।

"मैं उसी वादे के सिलसिले में हाजिर हुआ हूं, परवरदिगार ! लेकिन...।" भिश्ती कहते-कहते रुका।

"लेकिन क्या ?"—बादशाह चौंका।

"डर यही है, जहांपनाह—कि आप शायद अपना वादा पूरा न कर पाएं।" भिश्ती बोला।

"क्या कहते हो तुम ? हुमायूं अपनी जान पर खेलकर भी अपना वादा पूरा करेगा।" हुमायूं तमककर बोला, "तुम अपनी ख्वाहिश का इजहार करो। ऐसी कौन-सी मुराद है, जिसे हम पूरा नहीं कर सकते। जरा हम भी तो सुनें।"

"तो जहांपनाह ! सिर्फ़ दो दिन के लिए—मुझे अपना ताजो-तख्त देने की मेहरबानी करें।" भिश्ती ने बड़ी चतुराई से अपनी मांग सामने रखी।

यह सुनकर हुमायूं हतप्रभ हो गया। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। सारे दरबारी और वजीर भिश्ती का दुस्साहस देखकर गुस्से से तमतमाने लगे। उन्हें देखकर भिश्ती सिहर उठा।

"जहांपनाह ! गरीब पर रहम करें। गुस्ताखी की माफी मैंने पहले ही मांग ली थी। मुझे इजाजत दें।" कहकर भिश्ती वापस लौट पड़ा।

"ठहरो !" हुमायूं बोला, "मैं अपना वादा पूरा करूंगा। मैं तुम्हारी मुराद पूरी करता हूं। तुम दो दिन के लिए इस मुल्क के बादशाह हुए।"

हुमायूं के इस फैसले से सारे दरबारी भौंचक्के रह गए। वे सोचने लगे कि ऐसे मौके पर, जब कि दुश्मन शेरशाह हमला करने के लिए आने ही वाला है, बादशाह यह क्या बेवकूफी कर रहे हैं ? पर हुमायूं अपने फैसले पर अटल था। उसने अपनी गद्दी भिश्ती को सौंप दी और अपने अमीरों को हिदायत दी कि वे भिश्ती का हुक्म मानें। वजीर और दरबारी इस फैसले से अप्रसन्न हुए, पर बादशाह का फैसला अपनी जगह था। उन्हें इस फैसले का सम्मान करना पड़ा। भिश्ती ने दो दिन तक मनमाने ढंग से हुकूमत की।

पूरा मुगल खानदान हुमायूं के फैसले से हिल गया। हर तरफ खलबली मची थी।

हुमायूं का दूर का भाई कामरान उसका प्रतिद्वंद्वी था। वह हुमायूं के इस फैसले से इतना बौखलाया कि उसने हुमायूं को धमकी भरा पत्र लिखते हुए कहा—"एक नौकर को

इनाम-इकराम या कोई और चीज तोहफे में दी जा सकती थी। लेकिन उसे गद्दी पर बिठा देने की तुक समझ में नहीं आई। ऐसे मौके पर, जब कि शेर खां नजदीक आ पहुंचा है, एक बादशाह का यह कदम क्या बेवकूफी नहीं है ?"

पर तमाम विरोध के बावजूद हुमायूं ने अपना वचन निभाया और भिश्ती को दो दिन के लिए अपनी सल्तनत सौंप दी।

अजमेर में महान सूफी संत मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के पास ही दो दिन के बादशाह, उस भिश्ती की कब्र अभी भी मौजूद है और इतिहास की उस अनोखी घटना की याद दिलाती है।

8. सूरज नहीं डूबेगा

शाम का झुटपुटा था। पंछी दिन-भर की उड़ान के बाद अपने-अपने घोंसलों की ओर लौट रहे थे। सूरज भी पूरे दिन तपने के बाद दूर क्षितिज पर डूबता चला जा रहा था। पूरे वातावरण में एक उदासी-सी छाई हुई थी। अरावली की बीहड़ पहाड़ियों पर हर तरफ सूनापन और सन्नाटा छाने लगा था।

महाराणा प्रताप एक चट्टान पर बैठे हुए थे और सूनी निगाहों से डूबते सूरज को देख रहे थे। एक सवाल बार-बार उनके मन में उठ रहा था...क्या मेवाड़ का सूरज भी हमेशा के लिए डूब जाएगा ? बप्पा रावल और राणा सांगा का मेवाड़ ! अब तो उन दिनों की धुंधली-याद ही बची है, जब राजपूतों के यश का सूरज पूरी तरह से दमक रहा था। और आज...! आज राजपूताने के नाम पर सिर्फ मेवाड़ बचा है ! बाकी सारा इलाका मुगलों की आंधी निगल चुकी है।

महाराणा विचारों में खोए हुए थे। तभी एक सैनिक ने आकर उनका ध्यान भंग किया—"महाराणा ! गुप्तचर ने समाचार दिया है कि कुछ मुगल सैनिक पास के गांव में आकर ठहरे हैं। वे शायद आपको ही खोज रहे हैं। अतः कल तड़के ही हमें यह जगह छोड़ देनी पड़ेगी।"

"हूं।" महाराणा प्रताप ने गम्भीर स्वर में हुंकार भरी।

"महाराणा ! महारानी आपको याद कर रही हैं।" सैनिक ने पुनः निवेदन किया।

"तुम चलो, हम अभी आते हैं।" महाराणा ने जवाब दिया। सैनिक चला गया।

महाराणा उठे और धीरे-धीरे चलने लगे। वे लगातार सोचते चले जा रहे थे...हल्दी-घाटी के युद्ध के बाद से अभी तक यही खेल चल रहा है। खानाबदोशों की तरह इन पहाड़ियों पर भटकना ही नियति बन गई है ! ...उन्हें महारानी और बच्चों का ख्याल आया। गुफाओं में रातें बिताना, फल-फूल और जंगली घास की रोटी खाना। महाराणा और उनके सैनिक तो यह सब सह सकते थे, लेकिन महारानी और बच्चों की तकलीफें उनसे नहीं देखी जाती थीं। सिसोदिया वंश के कुलदीपकों को इस बदहाली में देखकर कौन नहीं पसीज उठेगा ! सोचते-सोचते वह महारानी के पास पहुंचे।

"महारानी ! आपने याद किया ? क्या बात है ?" महाराणा बोले।

"महाराज ! आज तो खाने के लिए कुछ भी नहीं है, छोटे बच्चों की तकलीफ देखी नहीं जा रही।" महारानी उदास स्वर में बोलीं।

महाराणा चिंतित मुद्रा में अलाव के पास टहलने लगे। थोड़ी देर बाद बोले, "आज तो पास के गांवों से रसद भी नहीं आ सकती, क्योंकि वहां मुगल सैनिक हमारी तलाश कर रहे हैं। ऐसा कीजिए, जंगली घास की रोटी बनाकर बच्चों को दे दीजिए!"

"महाराज! मैं इन बच्चों की मां हूं। इन्हें अपने ही हाथों से घास की रोटी कैसे खिलाऊं?" महारानी के स्वर में बेबसी थी।

"समय हमारी परीक्षा ले रहा है, महारानी! हमें कठिनाइयों का यह दौर किसी तरह गुजारना ही है।" महाराणा ने उदास होकर कहा।

महारानी हताश होकर आस-पास की घास इकट्ठा करने लगीं और महाराणा वहीं अलाव के पास एक चट्टान से टिककर बैठ गए। सामने प्रहरी पहरा दे रहे थे। तभी कुछ शोर-सा सुनाई दिया। महाराणा का कड़कदार स्वर गूंज उठा—"क्या बात है? प्रहरी, कौन है वहां?"

प्रहरी ने आकर सूचना दी, "महाराज! एक बूढ़ा फकीर है। कहता है, यहीं रात बिताऊंगा!"

"उसे यहां ले आओ।" महाराणा ने आदेश दिया।

थोड़ी देर बाद वह फकीर लाठी टेकता हुआ वहां पहुंचा। उसके चेहरे पर तेज था और आंखों में एक रहस्यमय चमक। महाराणा उससे प्रभावित भी हुए और सशंकित भी।

"कहां से आ रहे हो, बाबा? कहां जाना चाहते हो?"

फकीर के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट उभर आई। आसमान की ओर देखते हुए उसने जवाब दिया—"हम कहां से आए हैं और हमें कहां जाना है—ये कौन जान सका है, बेटा? यहां अलाव जलता देखा, तो सोचा आज रात यहीं गुजार दें।"

"ठीक है, बाबा! आप यहां सो सकते हैं।"

फकीर कुछ पुआल इकट्ठा करके वहां सो गया। राजकुमारी और उसका छोटा भाई लगातार रोटी के लिए जिद कर रहे थे और रो रहे थे। महारानी उन्हें समझा रही थीं और रोटियां तैयार करने के साथ-साथ उन्हें कहानियां सुनाकर बहलाने की भी कोशिश कर रही थीं, पर महारानी का हर प्रयास विफल हो रहा था।

थोड़ी ही देर में रोटियां तैयार हो गईं और बच्चे कटोरे में पानी लेकर बैठ गए। उनकी आंखों में एक चमक थी। महारानी ने रोटियां बच्चों की तरफ बढ़ाई ही थीं कि तभी बिजली की तेजी से एक बनबिलाव झाड़ियों से निकलकर झपटा और रोटियां मुंह में दबोचकर दूसरी तरफ लुप्त हो गया। महारानी का हृदय चीत्कार कर उठा और बच्चे फटी-फटी आंखों से उस झाड़ी को देखने लगे, जिसमें उनकी रोटियां समा गई थीं।

नियति के इस क्रूर मजाक को देखकर अविचल हृदय वाले महाराणा प्रताप भी विचलित हो उठे। आज तक उन्होंने बड़ी-बड़ी विपत्तियों को झेला था और कभी उफ तक न की थी, पर आज उन्हें लगा कि उनकी सहनशक्ति जवाब दे जाएगी। एकबारगी तो वह स्तब्ध रह गए, फिर उन्होंने दौड़कर बच्चों को अपने सीने में छिपा लिया। उनकी आंखों से आंसुओं की धार फूट पड़ी। मन में विचारों की आंधी चलने लगी। अपने जीवन की निरर्थकता और निष्फलता का भाव उन्हें कौंचने लगा। मेरा जीवन किसके काम आया? जिस राज्य के लिए मैंने अपनी जिंदगी दांव पर लगा दी, वह अभी भी पराधीनता के चंगुल में है। अपने साथ मैंने अपने वफादार साथियों को भी यह बदतर जिंदगी जीने के लिए बाध्य किया। पत्नी और बच्चों को दर-दर की ठोकरें खाने को मजबूर किया!

उनके मन में घोर निराशा समाती चली गई। उसी निराशा में वह बोले—"महारानी! बस, अब बहुत हो चुका! मैं जान गया कि मैं गलत रास्ते पर चल रहा था। मैं जिंदगी में किसी का भला न कर सका! न अपने परिवार का, न अपने साथियों का और न अपने राज्य का! मेरा स्वाभिमान, मेरा देश-प्रेम और कुछ नहीं, बल्कि मेरा खोखला अहं था! इस झूठे गर्व की खातिर मेरे बहुत-से साथी अपना जीवन भेंट कर चुके हैं। लेकिन अब ऐसा नहीं होगा। मैं कल ही अकबर को सूचित कर दूंगा कि मुझे तुम्हारी अधीनता स्वीकार है!"

महारानी जैसे सोते से जाग पड़ी—"महाराणा!...आप...आप अकबर की अधीनता स्वीकार करेंगे? मेरी और मेरे बच्चों की बरसों की कठिन तपस्या का यही फल देंगे आप! जिसे आप अपना खोखला अहं और झूठा गर्व बता रहे हैं, वही तो मेवाड़ की पूंजी है और हम सबकी शक्ति है! आपके मन में यह कमजोरी कैसे आ गई? आप ऐसा नहीं कर सकते!"

कुछ देर तक स्तब्धता छाई रही। महाराणा आंखें बंद किए विचारों में डूबे रहे। कुछ क्षणों बाद उन्होंने मौन तोड़ा, "मैं जानता हूं कि आपने अभी-अभी जो कहा है, वह इसलिए कि मैं अपनी नजरों में न गिरने पाऊं। महारानी! हम तो अपनी जिंदगी जी चुके, लेकिन हमें कोई हक नहीं कि हम अपने बच्चों के जीवन से खेलें। जो चीज मुझे चिंतित कर रही है, वह है इन बच्चों का भविष्य!"

महारानी समझ गई कि अभी राणा को समझा पाना मुश्किल है। बच्चे भूख से निढाल एक तरफ सो गए थे। उन्होंने कहा, "रात काफी हो गई है। अब सो जाइए। कल सुबह तड़के ही यह जगह भी खाली करनी है।"

कुछ देर तक महाराणा ने सोने का निष्फल प्रयास किया, पर अंततः उन्हें नींद आ ही गई।

चिड़ियों की चहचहाहट सुनकर महाराणा की आंखें खुलीं। बूढ़ा फकीर भी जाग गया था और आगे के सफर की तैयारी कर रहा था। महाराणा को जागा हुआ देखकर वह उनके

पास आया और उनका अभिवादन करते हुए बोला—"अगर इजाजत हो, तो कुछ अर्ज करना चाहता हूं।"

"कहो बाबा, क्या कहना चाहते हो !" महाराणा ने कहा।

फकीर ने महाराणा को लड़ाई जारी रखने की सलाह दी

फकीर ने बोलना शुरू किया—"महाराणा ! कल रात मैं जागा हुआ था। मैंने आपके और महारानी के बीच हुई बातचीत सुनी। सुनकर कुछ कहने की इच्छा हुई, मगर मैं उस इच्छा को दबा गया। अब जब कि मैं जा रहा हूं, तो आपसे कुछ कहना चाहता हूं ! आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि आपका जीवन बेकार गया ? आखिर जिंदगी को नापने का पैमाना क्या है ? मेरी समझ से तो जिस आदमी को आने वाली नस्लें फख्र से याद करें, उसी की जिंदगी

के कोई मायने होते हैं। मैं दावे से कह सकता हूं कि इतिहास आपको याद रखेगा। आप मुगल बादशाह को हथियार सौंपने का अपना इरादा बदल दीजिए और अपनी लड़ाई जारी रखिए। अल्लाताला आपकी उम्र दराज करे।"

यह कहकर फकीर धीरे-धीरे लाठी टेकता हुआ आगे चल दिया।

सुबह का सूरज धीरे-धीरे आसमान में ऊपर चढ़ रहा था। रात का अंधेरा दूर हो चुका था। महाराणा के मन का अंधेरा भी फकीर की बातों से दूर हो गया था और उनके चेहरे पर एक दृढ़ निश्चय की किरणें दिखाई पड़ रही थीं। उन्होंने उगते हुए सूरज को देखा और बुदबुदाए—मेवाड़ का सूरज भी कभी नहीं डूबेगा। उन्होंने दूर जाते बूढ़े फकीर को देखा और मन ही मन धन्यवाद दिया।

कुछ देर बाद वह फकीर आंखों से ओझल हो गया।

बूढ़ा फकीर जा चुका था, पर महाराणा के मन में पश्चात्ताप भर गया था। महाराणा यही सोचते रहे कि अकबर की अधीनता स्वीकार करने की बात उनके मुंह से निकल कैसे गई? वह सोचने लगे कि महारानी तक को यह बात नहीं जंची! उन्होंने अपने अबोध बच्चों को भूखे रखना मंजूर किया, लेकिन अधीनता की बात को एकदम अस्वीकार कर दिया। वाह रे, मेरे कातर मन! कैसे आ गई पराधीनता की बात तुझमें!

महाराणा के मन में जहां ग्लानि थी, वहीं उनके भीतर अपूर्व उत्साह का संचार हो रहा था। बूढ़ा फकीर जाने क्या जादू-सा कर गया था। कौन था यह बूढ़ा फकीर? कहां से आया था? किधर जा रहा था? और यहीं पर रात बिताने की जिद क्यों कर रहा था? महाराणा सोचते चले जा रहे थे।

महाराणा पर जादू का-सा ही असर था। वह नए सिरे से अकबर से लोहा लेने की तैयारी कर रहे थे। पर रह-रहकर उनका ध्यान उस बूढ़े फकीर की ओर चला जाता। वाह रे, बाबा! तुमने बचा लिया मुझे! वरना आने वाली पीढ़ियां मेरे नाम पर कालिख पोत देतीं। मैं भी कितना भाग्यवान हूं कि जब भी टूटने को हुआ हूं, तभी किसी-न-किसी ने बचा ही लिया। पहली बार जब अकबर को पत्र लिखा, तब पृथ्वीसिंह ने उस पत्र को जाली बताकर मेरी आन रख ली और मुझे पत्र लिखकर समर्पण न करने को कहा और इस बार यह बूढ़ा फकीर!

महाराणा बड़बड़ा ही रहे थे कि सहसा एक सैनिक ने आकर कहा—"महाराणा जी, अभी-अभी हमारे गुप्तचर ने सूचना दी है कि सम्राट अकबर कल पूरी रात अपने डेरे से गायब रहे। किसी ने उन्हें कल रात को इस तरफ आते देखा था और आज सुबह भी किसी ने उन्हें इस तरफ से गुजरते देखा था।"

महाराणा सैनिक की ओर अवाक् देखते रहे। सहसा उनके मुंह से निकला—"पर—पर अकबर इधर की तरफ!...और अकेले! नहीं...नहीं!...ऐसा नहीं हो सकता!...उन्हें क्या जरूरत आ पड़ी होगी...अजीब लगती है यह बात!...किसी ने जरूर अफवाह फैलाई है!...ऐसा नहीं हो सकता!...रात को तो वह देवदूत आया था इधर और सुबह मुझ पर जादू करके चला गया!"

"कौन देवदूत, महाराणा जी!" सैनिक ने चौंककर पूछा।

"वही...वही, बूढ़ा फकीर!" महाराणा एकदम बोले।

"कहीं...वही तो...!" सैनिक की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि महाराणा ने अविश्वास से सिर हिलाकर कहा, "नहीं!"

परंतु यह रहस्य महाराणा की भी समझ में नहीं आ सका कि वह बूढ़ा फकीर कौन था? कहां से आया था? कहां जा रहा था? और रात यहीं पर बिताने की जिद क्यों कर रहा था? लेकिन कहा जाता है कि वह बूढ़ा फकीर कोई और नहीं, बल्कि स्वयं सम्राट अकबर था।

9. नकली किला और असली लड़ाई

राजपूत लोग अपनी आन-बान की खातिर मर-मिटने के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इतिहास गवाह है कि अनेक राजपूतों ने जो वचन दिया, उसे पूरा करने के लिए अपने प्राण तक न्योछावर कर दिए। राजपूतों की यह परम्परा इतिहास में सदियों तक कायम रही। ऐसा ही एक प्रण चित्तौड़ के राणा ने भी लिया था।

यह घटना आज से लगभग पांच सौ वर्ष पहले की है। उस समय बूंदी रियासत में हामा नामक राजा राज्य करते थे। वे हाड़ा जाति के राजपूत थे। बूंदी रियासत पहले चित्तौड़ के राजाओं के अधीन थी। किन्तु अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के बाद चित्तौड़ के पराक्रमी राणा शक्तिहीन हो गए थे। चित्तौड़ के राणाओं के अशक्त हो जाने पर बूंदो के राजाओं ने चित्तौड़ की अधीनता अस्वीकार कर दी थी और वे स्वतंत्र हो गए थे।

कुछ वर्षों बाद चित्तौड़ के राणा ने पुनः शक्ति प्राप्त कर ली। शक्तिसम्पन्न हो जाने के बाद राणा को बूंदी की रियासत का ख्याल आया। उन्होंने बूंदी के शासक को कहला भेजा कि अब से तुम्हें चित्तौड़ की अधीनता में रहना होगा। दूत के माध्यम से जब यह सन्देश हामा को मिला, तो उसे बहुत क्रोध आया। हामा ने दूत से कहा, "हुंह !...अब वह पुराना जमाना दुबारा नहीं लौटेगा, अपने राणा से जाकर कह देना कि हम किसी के अधीन रहने वाले नहीं हैं। बूंदी का राज्य हमारे पुरखों ने तलवार के दम पर हासिल किया है। अब यह रियासत सिर्फ हमारे अधीन है। हम अब किसी के अधीन होने वाले नहीं हैं। हां, हम उन्हें अपने से बड़ा जरूर मानते हैं, और इसी नाते अगर वह चाहेंगे, तो कभी होली-दिवाली पर उनसे मिलने चले आया करेंगे। इससे ज्यादा की उम्मीद हमसे न करें और अधीनता का तो कोई सवाल ही पैदा नहीं होता !"

दूत ने जब हामा का सन्देश राणा को सुनाया, तो राणा के क्रोध का पारावार न रहा। वह बड़ी जोर से दहाड़े—"उसकी यह मजाल ! अभी तक हमारी अधीनता में रहता आया था, हम थोड़े कमजोर क्या पड़ गए कि अब आंखें दिखाता है ! खैर, इस हिमाकत का मजा हम उसे चखाएंगे !"

राणा ने अपने सैनिकों को बुलाया और बूंदी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी।

राणा की फौज ने बूंदी के निकट निमोरिया नामक स्थान पर अपना डेरा डाल लिया। दूतों ने इस चढ़ाई की सूचना हामा को पहले ही पहुंचा दी थी। हामा ने चुने हुए पांच सौ योद्धा अपने साथ लिए और रात के समय चुपचाप राणा के डेरे पर छापा मार दिया। राणा के सैनिक इस अचानक हमले से घबरा गए। हामा और उसके साथियों ने राणा के हजारों

बूंदी के किले पर चढ़ाई

सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। जो बचे, वे अपनी जान बचाकर भाग गए। राणा भी किसी प्रकार अपनी जान बचाकर चित्तौड़ लौट गए। इस प्रकार हामा की जीत हुई और वह अपनी विजय का डंका बजाता हुआ बूंदी लौट गया। जीत की खुशी में हामा और उसके सैनिकों ने उत्सव भी मनाया।

हामा के हाथों हुई इस पराजय से चित्तौड़ के राणा ने अपने आपको बहुत लज्जित और अपमानित महसूस किया। एक छोटी-सी रियासत ने इतने बड़े राज्य को देखते-ही-देखते हरा दिया। राणा का मस्तक लज्जा से झुक गया। उन्हें अपने ऊपर ग्लानि हो आई—"मेरी इतनी विशाल सेना को बूंदी के पांच सौ हाड़ा राजपूतों ने नष्ट कर दिया। यह हमारे लिए मर जाने की बात है।"

राणा बहुत दुखी और उदास थे। भीतर-ही-भीतर वह इस पराजय का बदला लेने का उपाय सोच रहे थे। काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने अपने सेनापति को बुलाया और बोले—"सेनापति ! हमें या तो इस हार का बदला लेना चाहिए, वरना हमें राजपूत कहलाने का कोई हक नहीं है।"

सेनापति खामोश रहे।

"ठीक है ! मैं शपथ लेता हूं कि जब तक मैं बूंदी के किले पर अपना कब्जा न जमा लूंगा तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगा !" राणा क्रुद्ध स्वर में बोले।

सेनापति अवाक देखते रह गए।

"तुम ऐसे क्यों देख रहे हो, सेनापति! हमने प्रण किया है, तो इसे पूरा करके ही दिखाएंगे। तुम सेना तैयार करो !" राणा बोले।

सेनापति सोच में पड़ गए। वह चुपचाप चले गए। रास्ते में वह सोचते रहे कि राणा अपनी प्रतिज्ञा कैसे पूरी कर पाएंगे। बूंदी चित्तौड़ से लगभग चालीस मील दूर है और फिर सेना एकत्रित करने के लिए भी तो समय चाहिए। इतने दिनों तक अन्न-जल के बिना तो जीना दूभर हो जाएगा।

राणा की प्रतिज्ञा का समाचार सारे दरबारियों और मंत्रियों तक पहुंच गया। सारे बंधु-बांधव मिलकर इस पर विचार करने लगे। अन्ततः वे राणा के पास पहुंचे और बोले, "महाराज ! आपने जो प्रण लिया है, वह अच्छा तो है, किन्तु उसे निभाना बहुत कठिन है। उसका पालन होने तक आपके प्राणों की रक्षा हो पाना मुश्किल है। कृपया आप इस प्रतिज्ञा को छोड़ दीजिए।"

पर राणा टस-से-मस नहीं हुए। बोले, "प्रतिज्ञा छोड़ना कायरता है। इससे अच्छा तो प्राण त्याग देना है। एक क्षत्रिय के लिए इससे बड़ी शर्म की बात और क्या हो सकती है ?"

सब लोग परेशान हो उठे। अब क्या हो ? एक ओर राणा का प्रण और दूसरी ओर उसे निभाने में लगने वाला समय ! विचार करते-करते राणा के मंत्रियों को एक उपाय सूझा। उन्होंने आपस में मंत्रणा की और अंततः राणा के प्राणों की रक्षा के लिए वह युक्ति राणा तक पहुंचाने का दायित्व अपने प्रधानमंत्री को सौंपा। प्रधानमंत्री बहुत ही कुशल और नीतिनिपुण थे। उन्होंने राणा से प्रार्थना की—"महाराज ! हमें आपका प्रण पूरा करने का एक उपाय सूझा है। यदि आप आज्ञा दें, तो उसे बताया जाए !"

राणा बोले, "कहिए ! क्या उपाय है ?"

"महाराज ! बूंदी का किला फतह करने में काफी समय लग सकता है। हम आपको आश्वासन देते हैं कि हम अवश्य विजयी होंगे। किन्तु तब तक अन्न-जल ग्रहण न करने का आपका प्रण हमें बहुत कठिनाई में डाल रहा है। हम चाहते हैं कि आपका प्रण भी पूरा

हो और इसके साथ-साथ आपके प्राणों की रक्षा भी हो जाए। यदि आप आज्ञा दें, तो हम बूंदी का एक नकली किला बनाए देते हैं। आप दल-बल सहित उसे तोड़कर अपना प्रण पूरा कर लीजिए और अन्न-जल ग्रहण कर लीजिए। बूंदी के असली किले पर हम पांच-छः दिनों के अन्दर ही चढ़ाई कर देंगे।"

राणा पहले तो इसके लिए तैयार नहीं हुए, किंतु सेनापति के बहुत आग्रह पर अंततः उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। चित्तौड़ के पास ही एक मैदान में मिट्टी से बूंदी का नकली किला तैयार किया गया। उतने ही फाटक, उतने ही बुर्ज। सभी कुछ वैसा ही।

बूंदी में हाड़ा जाति के जिन राजपूतों का राज्य था, उसी जाति के राजपूतों की एक टुकड़ी चित्तौड़ की सेना में भी थी। कुम्भा वैरसी नाम का हाड़ा राजपूत उस टुकड़ी का प्रधान था। वह शिकार करने गया हुआ था। लौटते हुए उसने बूंदी का नकली किला बनता देखा। उसे बड़ा कौतूहल हुआ। उसने एक व्यक्ति से पूछा, "यह क्या बना रहे हो ?"

"यह बूंदी का नकली किला बन रहा है।' उस व्यक्ति ने कहा।

"क्यों, इस तमाशे का क्या उद्देश्य है ?" कुम्भा ने पूछा।

"राणाजी ने प्रण किया है कि वह बूंदी का किला तोड़कर ही अन्न-जल ग्रहण करेंगे।" वह व्यक्ति बोला।

कुम्भा को हंसी आ गई। वह बोला, "यह बच्चों के खेलने का मिट्टी का घरौंदा भला बूंदी का किला कैसे हो सकता है ?"

"नहीं, यह तो राणाजी के प्रण को पूरा करने के उद्देश्य से ही बनाया गया है, ताकि वह अन्न-जल ग्रहण कर सकें। असली किला भी तोड़ा जाएगा, पर कुछ दिन बाद।"

"अच्छा ! तो यह बात है। उपाय अच्छा ढूंढ़ा है।" कुम्भा व्यंग्य से मुस्कराया और चल पड़ा। रास्ते में वह राणा की प्रतिज्ञा पर सोचते-सोचते क्रोधित हो उठा। डेरे पर आकर उसने अपनी टुकड़ी के हाड़ा राजपूतों को बूंदी के नकली किले को तोड़ने की खबर सुनाई। सुनकर वे लोग भी क्रोधित हो उठे—"हम लोगों की मातृभूमि बूंदी का यह अपमान ! जब तक हमारे प्राण हैं, तब तक हम उस नकली किले को भी नहीं टूटने देंगे। हमने राणाजी की दासता ग्रहण की है, पर दास हैं तो क्या अपनी जन्मभूमि का ऐसा अपमान हम अपनी आंखों से देखेंगे ? नहीं, हम अपने उस नकली किले की भी रक्षा करेंगे और मर जाने पर ही राणाजी और उनकी सेना को उसके भीतर घुसने का अवसर देंगे।...अगर राणाजी इतने ही वीर थे, तो कायरों की तरह बूंदी से पिटकर क्यों भाग आए ?"

उन्होंने आपस में सलाह-मशविरा किया और वे लोग राणा से लड़ने के लिए तैयार हो गए। अस्त्र-शस्त्र से सज्जित होकर वे लोग उस नकली किले के अन्दर पहुंच गए।

राणा निश्चित समय पर अपनी थोड़ी-सी सेना को साथ लेकर नकली किले की तरफ बढ़ चले।

सेनापति ने अपने कुछ सैनिकों से कह दिया था कि वे किले के अन्दर से बंदूकों के खाली फायर करेंगे और राणा तथा उनके साथी किले पर धावा करके उसे ले लेंगे। परन्तु यह क्या? राणा जैसे ही किले के पास पहुंचे कि नकली किले के भीतर से अचानक हो असली गोलियां बरसने लगीं। यह देखकर राणा दंग रह गए। उन्होंने अपने एक सैनिक को आज्ञा दी कि वह जाकर असलियत का पता लगाए।

वह सैनिक आगे बढ़ा। उसने देखा कि कुम्भा उस किले के मुख्य द्वार पर अस्त्र-शस्त्र लिए पहरा दे रहा है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला—"क्या बात है, कुम्भाजी! आप यहां क्या कर रहे हैं?"

"मैं अपनी मातृभूमि की रक्षा कर रहा हूं। बूंदी मेरी मातृभूमि है। बूंदी का किला नकली हो या असली, उसकी रक्षा करना मेरा पहला फर्ज है।" कुम्भा क्रोधित स्वर में बोला।

यह सुनकर सनिक दंग रह गया। तब तक राणा भी वहां आ पहुंचे। उन्होंने कुम्भा की बात सुन ली। बोले, "कुम्भा! तुम मेरी सेना के जवान हो। तुम क्या कह रहे हो? क्या तुमने इस बात पर विचार भी किया है? फिर यह कोई असली किला तो है नहीं, जिसकी रक्षा के लिए तुम अपने प्राणों की बाजी लगा रहे हो!"

"राणाजी, मैं आपका चाकर हूं। मैं आपका हर हुक्म मानने को तैयार हूं। पर अपनी मातृभूमि के साथ यह बेहूदा मजाक मुझे सहन नहीं होगा। मैं आपका हृदय से स्वागत करने के लिए तैयार हूं। मेरी पगड़ी बिछी है, उसी पर पैर रखते हुए आप चले आइए और नकली किला तोड़ डालिए। पर किला तोड़ने से पहले आपको युद्ध तो करना ही होगा और आपके स्वागत के लिए बूंदी की हाड़ा जाति का यह तुच्छ सेवक कुम्भा तैयार है।" कहते-कहते कुम्भा ने अपनी तलवार निकालकर हवा में लहरा दी।

देखते-देखते घमासान युद्ध शुरू हो गया। कुम्भा और उसके साथी लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए। राणा उनकी लाशों के ऊपर से गुजरकर ही नकली किले के भीतर प्रवेश कर सके।

राणा ने इस तरह प्रतिज्ञा-पालन करके पानी तो पी लिया और रोटी भी खा ली, पर कुम्भा और उसके दल के हाड़ा राजपूतों की वीरता, उनका मातृभूमि-प्रेम और अपनी जाति की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा देने की भावना देखकर वह सहम गए। उन्होंने बूंदी के असली किले पर चढ़ाई करने का साहस फिर कभी नहीं किया।

10. ठौर-ठौर राठौर

ऐतिहासिक नगर आगरा का ताजमहल अपनी सुंदरता के लिए दुनिया-भर में मशहूर है। दुनिया का आठवां आश्चर्य समझे जाने वाली यह इमारत मुगल बादशाह शाहजहां ने अपनी परमप्रिय पत्नी मुमताज महल की याद में बनवाई थी। ताजमहल पर वह स्वयं भी बहुत मुग्ध था। कहते हैं, आगरा के किले के एक कक्ष में बैठकर शाहजहां शीशे में ताजमहल का निर्माण-कार्य देखता रहता था। जब उसके बेटे औरंगजेब ने उसे गिरफ्तार करके सत्ता हथिया ली, तो शाहजहां ने अपनी जिंदगी के आखिरी दिन किले के उसी कक्ष में बैठकर ताजमहल को निहारते हुए अपनी बेगम की याद में गुजारे थे।

ताजमहल को देखते हुए उसका ध्यान बरबस ही पत्थर के बने उस घोड़े पर भी चला जाता था, जो अभी भी किले के चारों तरफ बनी खाई के बाहरी किनारे पर धरती में आधा धंसा हुआ है। ऐसे में उसकी आत्मा उसे कचोटती थी। एक तरफ ताजमहल है, जो सदियों तक उसकी कीर्ति फैलाता रहेगा और दूसरी तरफ यह पत्थर का घोड़ा, जो उसकी कीर्ति पर कलंक की तरह न जाने कब तक यों ही गड़ा रहेगा!

कौन था यह पत्थर का घोड़ा? क्या थी इसकी कहानी? इतिहास में अनेक घोड़ों के अनोखे कारनामे पढ़ने में आते हैं। इनमें से राणा प्रताप का घोड़ा 'चेतक' सर्वाधिक चर्चित है। किन्तु जिस घोड़े का प्रसंग यहां दिया जा रहा है, उसके कारनामे चेतक से कहीं अधिक बढ़कर हैं। यह घोड़ा था प्रसिद्ध शूरवीर अमरसिंह राठौर का।

पत्थर का यह घोड़ा अपनी जुबान से कुछ नहीं कहता, किन्तु आगरा के किले के सामने खड़े होकर जब दर्शक इस पथरीले घोड़े को देखते हैं, तो उनकी आंखों के आगे पूरा इतिहास, पूरा घटनाक्रम कौंध जाता है।

यह घटना आज से लगभग चार सौ साल पुरानी है। तब देश में मुगल सम्राट शाहजहां का शासन था और आगरा उसकी राजधानी थी। अमरसिंह राठौर शाहजहां की फौज का जांबाज सिपाही था। वह अपनी वीरता और पराक्रम के लिए प्रसिद्ध था। युद्ध में उसने अनेक बार दुश्मन को लोहे के चने चबवाए थे। उसकी शूरवीरता की ख्याति स्वयं सम्राट शाहजहां के कानों तक पहुंच गई थी। शाहजहां को भी उस पर गर्व था। शाहजहां का स्नेह-भाजन होने की वजह से कुछ लोग अमरसिंह से ईर्ष्या भी करते थे और समय-समय पर बादशाह को उसके बारे में गलत सूचनाएं भी देते रहते थे। ऐसे लोगों में शाहजहां का साला सलावत खां और स्वयं अमरसिंह की पूर्व-पत्नी का भाई अर्जुन गौर भी था। किन्तु शाहजहां उन लोगों की शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं देता था। अमरसिंह भी ऐसे ईर्ष्यालु लोगों की

परवाह नहीं करता था। वह पूरी लगन से अपने कर्तव्य का पालन करता था। शाहजहां उसकी सच्ची लगन और कर्तव्यपरायणता से बेहद प्रसन्न था और उसे समय-समय पर इनाम देकर सम्मानित करता रहता था।

एक दिन अमरसिंह शाहजहां के दरबार में उपस्थित हुआ और बोला—"बंदापरवर! मुझे कुछ दिन की छुट्टी देने की मेहरबानी की जाए। मैं अपने घर जाना चाहता हूं।"

"क्यों? क्या बात है, अमरसिंह?" शाहजहां ने पूछा।

"शहंशाह...!" अमरसिंह इतना ही कह सका।

"क्यों अमरसिंह! घर में खैरियत तो है।" बादशाह ने फिर कहा।

"वैसे तो सब खैरियत है, जहांपनाह! पर...!" अमरसिंह इतना कहकर फिर चुप हो गया।

"पर क्या, अमरसिंह! तुम्हारी पहेली हमारी समझ में नहीं आ रही है। साफ-साफ कहो, क्या बात है!" शाहजहां ने कहा।

"हुजूर, बात यह है कि मेरी शादी होने वाली है।" अमरसिंह सकुचाते हुए बोला।

"ओह!" शाहजहां बोला—"तो यह बात है! तुमने तो हमें घबरा ही दिया था। इसमें इतना शरमाने की क्या बात है? शादी तो खुशी की बात है। बोलो, कितने दिन की छुट्टी चाहिए।"

"जहांपनाह! मुझे सिर्फ एक महीने की छुट्टी चाहिए।" अमरसिंह बोला।

"ठीक है! तुम्हें एक महीने की छुट्टी दी जाती है।...और खुशी के इस मौके पर हम तुम्हें कुछ तोहफा भी देना चाहते हैं!" कहते हुए शाहजहां ने इत्र की एक शीशी अमरसिंह को दी।

अमरसिंह की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उसने शाहजहां को धन्यवाद दिया और दरबार से चल पड़ा।

छावनी में लौटकर अमरसिंह ने अपने साथियों को छुट्टी मिल जाने की बात बताई और घर जाने की तैयारी करने लगा।

अमरसिंह राठौर घर पहुंचा, तो उसके विवाह की तैयारियां होने लगीं। उसे बताया गया कि भावी वधू तथा उसके घर वाले उसकी बहादुरी और शूरवीरता के कारनामे सुन-सुनकर रोमांचित हैं और बड़ी बेसब्री से विवाह की शुभ घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अमरसिंह यह सब सुन-सुनकर मन-ही-मन मुग्ध होता। उसे अपने आप पर गर्व होने लगता।

आखिर विवाह की शुभ घड़ी भी आ गई। निश्चित तिथि को निश्चित समय पर धूम-धाम से विवाह हुआ। वर-वधू दोनों पक्षों के लोग इस विवाह से पुलकित थे। विवाह के पश्चात अमरसिंह राठौर अपनी पत्नी को लेकर लौटा।

जब उसने पहली बार अपनी पत्नी का मुख देखा, तो वह देखता ही रह गया। इतना अनुपम सौंदर्य! सम्राट शाहजहां की बेगम मुमताज महल भी क्या सुन्दर होगी इसके सामने! स्वयं सौंदर्य भी इसके आगे फीका पड़ जाएगा। किंतु वह रूपगर्विता आंखें झुकाए अपने में ही सिमटी जा रही थी। अमरसिंह के कहने पर जब उसने मुंह उठाकर देखा, तो वह भी देखती ही रह गई। इतना हृष्ट-पुष्ट-शरीर! इतना तेजस्वी मुखमंडल! वह मन ही मन अपने भाग्य को सराहने लगी कि उसे पति रूप में इतना साहसी और बलशाली योद्धा मिला है।

इस तरह अमरसिंह और उसकी पत्नी दोनों एक-दूसरे को देखकर मुग्ध थे। एक ओर अपूर्व सौंदर्य की स्वामिनी और दूसरी ओर बांका, वीर, जुझार राजपूत।

अमरसिंह और उसकी पत्नी को गृहस्थ-सुख भोगते-भोगते एक महीना बीत गया। छुट्टियां समाप्त हो गईं। पर अमरसिंह का मन अपनी नवविवाहिता पत्नी को छोड़कर जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। वह घर पर ही रहा।

छुट्टियां बीत जाने के बाद भी जब अमरसिंह फौज में वापस न लौटा, तो शाह-जहां ने शाही फरमान भेजकर उसे बुलवा भेजा। अमरसिंह ने शाही दूत को यह कहकर वापस भेज दिया कि वह कुछ दिन बाद अपने काम पर आ जाएगा।

शाहजहां ने जब यह सुना, तो उसे बहुत क्रोध आया। उसने शाही फरमान की अव-हेलना करने के जुर्म में अमरसिंह को सजा देने का फैसला किया। सलावत खां, अर्जुन गौर तथा अन्य दरबारियों ने बादशाह को उसके खिलाफ और भड़का दिया। मौका पाकर सला-वत खां ने शाहजहां से कहा—"जहांपनाह! हमने सुना है कि अमरसिंह शादी के बहाने घर में बैठा हमारे दुश्मनों से मिल गया है और उनके साथ शाही फौज में बगावत कराने की साजिश कर रहा है।"

यह सुनकर तो शाहजहां के क्रोध का पारावार न रहा। वह आग-बबूला हो उठा। उसने तुरंत कुछ सैनिक बुलाए और आदेश दिया—"उस नामुराद अमरसिंह को फौरन पकड़ कर ले आओ।"

दस-बारह सैनिक तुरंत अमरसिंह राठौर को पकड़कर लाने के लिए उसके घर रवाना हो गए। इनमें सलावत खां भी था।

जब वे उसके घर पहुंचे, तो अमरसिंह हतप्रभ रह गया। इतने शाही सैनिक यहां कैसे? उसके मन में अनेक तरह की आशंकाएं उठने लगीं।

"तुम्हें बादशाह सलामत ने फौरन बुलवाया है, अमरसिंह!" सलावत खां ने कहा।

"लेकिन मैंने तो कहलवाया था कि मैं थोड़े दिन बाद आऊंगा।" अमरसिंह राठौर बोला।

"तुमसे कुछ जरूरी सलाह-मशवरा करना है। सुना है, कहीं गड़बड़ हो गई है। वहां पर फौरन फौज भेजी जाएगी।" सलावत खां ने बादशाह के गुस्से वाली बात को छिपाते हुए कहा।

"पर इतने सैनिक भेजने की क्या जरूरत थी? तुम अकेले भी तो आ सकते थे, सरदार!" अमरसिंह के मन में शंका बनी हुई थी।

"दरअसल, बादशाह को डर था कि रास्ते में कहीं हम पर हमला न हो जाए। इसी-लिए उन्होंने दस-बारह आदमियों का दस्ता भेज दिया।" सलावत खां ने कहा।

"खैर! कोई बात नहीं!" अमरसिंह गहरी सांस छोड़कर बोला—"तुम लोग थोड़ी देर आराम करो। मैं तैयार होता हूं।"

अमरसिंह राठौर घर के भीतर गया। पत्नी ने जाने की बात सुनी, तो धक् से रह गई। अभी तो विवाह को एक महीना भी पूरा नहीं हुआ! पर शाही बुलावे पर तो जाना ही था। उसने स्वयं को सम्भाला और पति की तैयारी में जुट गई। चलते समय उसने अमरसिंह के मस्तक पर तिलक लगाया और भीगी पलकों से अपने पति को विदा किया।

"चलो, सरदार! मैं तैयार हूं।" अमरसिंह घर से बाहर निकलकर बोला।

"चलो!" अर्जुन गौर ने कहा और सारे सैनिक अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो गये।

अमरसिंह भी अपने घोड़े पर सवार हो गया। उसने घोड़े को एड़ लगाई और घोड़ा देखते-देखते हवा से बातें करने लगा। पीछे-पीछे अन्य सैनिकों का काफिला भी निकल पड़ा।

आगरा के किले के भीतर घुसकर ही अमरसिंह के घोड़े ने दम लिया। अन्य शाही सैनिक भी उसके पीछे-पीछे आ पहुंचे। यहां आकर शाही सैनिकों ने अमरसिंह को घेर लिया।

अमरसिंह घोड़े से उतरा। शाही सैनिक भी अपने-अपने घोड़ों से उतर पड़े। वे अमरसिंह को घेरकर खड़े हो गए। अमरसिंह को फिर आशंका हुई। आखिर माजरा क्या है? सैनिक घेर क्यों रहे हैं? वह भौंचक-सा देखने लगा।

"तुम शाही हिरासत में हो, अमरसिंह!" सलावत खां ने कहा।

"क्या मतलब?" अमरसिंह ने चौंककर पूछा।

"इसमें चौंकने की कोई बात नहीं है, अमरसिंह ! शाही हुक्म का पालन न करने के जुर्म में तुम पर जुर्माना किया गया है । बादशाह ने तुम्हें पकड़कर बुलवाया भी है । तुम्हें बादशाह के सामने पेश होना है ।" सलावत खां ने एकाएक पैंतरा बदला ।

"पर...पर सरदार ! आपने तो कहा था कि मुझे बादशाह ने सलाह-मशवरे के लिए बुलाया है ।" अमरसिंह अचकचाकर बोला ।

"अगर ऐसा न कहता, तो तुम यहां तक आते कैसे ? बेकार के खून-खराबे को टालने के लिए हमने ऐसा कहा ।" सलावत खां ने फिर तेवर बदले ।

"ओफ ! धोखा...सरासर धोखा...!...यह अपमान ! ...मैंने सोचा भी नहीं था ।...खैर। चलो बादशाह के पास !" कहते हुए अमरसिंह आगे बढ़ा । वरिष्ठ सैनिक व्यंग्य से हंसा और उसके पीछे-पीछे चल पड़ा ।

अमरसिंह इस अपमान से मन-ही-मन खिन्न हो रहा था । वह दरबार की तरफ बढ़ता जा रहा था और अपमान की आग में जलता हुआ, बदला लेने के लिए आवेश में भरता जा रहा था ।

सलावत खां के साथ अमरसिंह शाहजहां के सामने पेश हुआ । उसने बादशाह को झुककर सलाम नहीं किया । शाहजहां उसकी इस बेअदबी को देखकर गुस्से में भर उठा । पर अपने गुस्से को काबू में रखते हुए बोला—"क्या बात है, अमरसिंह ! तुमने बहुत देर कर दी ।"

अमरसिंह राठौर ने कोई जवाब नहीं दिया ।

"बोलो न, अमरसिंह ! इस देरी का क्या सबब है ?" बादशाह ने फिर पूछा ।

अमरसिंह राठौर फिर चुप रहा । वह अपनी गर्दन ताने शाहजहां की तरफ देखता रहा ।

बादशाह ने गुस्से से पहले तो अमरसिंह को और फिर पूरे दरबारियों को देखा । सारे दरबारी अमरसिंह राठौर की तरफ गुस्से और हैरत से देख रहे थे । इतनी बेअदबी ! एक मामूली नौकर की यह मजाल कि बादशाह की बात का जवाब न दे और हद यह कि गर्दन ताने शहंशाह को घूर रहा है ।

"क्या तुम इस गुस्ताखी का नतीजा भी जानते हो ?" बादशाह ने तनिक आवेश में कहा ।

"बहुत अच्छी तरह, आलमपनाह !" अमरसिंह राठौर ने उसी निर्भीकता के साथ उत्तर दिया—"मैं इसका नतीजा अच्छी तरह जानता हूं ।"

"अच्छा ! तो तुम जान-बूझकर यह बेअदबी कर रहे हो !" बादशाह का गुस्सा अब बेकाबू होने लगा ।

"जी हां !...बेइज्जती के जवाब में बेअदबी कोई गुनाह नहीं है ! मुझे बेइज्जती के साथ मेरे घर से लाया गया है। मुझसे यह सब बर्दाश्त नहीं हुआ।" अमरसिंह राठौर क्रोध से कांपने लगा।

"शाही फरमान की बेइज्जती करके तुम किस इज्जत की उम्मीद कर रहे थे ? क्या तुम्हें यह उम्मीद थी कि इसके बाद तुम्हें बादशाह अपने ताज पर बिठाकर लाएगा।...बहुत नादान हो, अमरसिंह !" शाहजहां गुस्से से तिलमिला रहा था।

"मैंने शाही फरमान की कोई बेअदबी नहीं की है। मैं अपनी पत्नी के साथ कुछ दिन और आराम करना चाह रहा था। यही मैंने कहलवाकर भी भेजा था ! क्या यह कोई ऐसा गुनाह था कि मुझ पर जुर्माना किया जाए और शाही फौज से पकड़वाकर बुलाया जाए।" अमरसिंह राठौर बोलते-बोलते उत्तेजित हो गया।

"तुम हमारे खिलाफ साजिश कर रहे थे !" शाहजहां तमतमाकर बोला।

अमरसिंह राठौर व्यंग्य से हंसा—"अपनी पत्नी के साथ रहकर मैं आपके खिलाफ क्या साजिश कर सकता था भला !"

इसका कोई जवाब शाहजहां के पास नहीं था, पर वह बोला—"तो फिर एक औरत के लिए तुमने शाही फरमान की कोई परवाह नहीं की ! क्यों ?"

"लोग तो एक औरत के लिए ताजमहल तक बनवा डालते हैं !" अमरसिंह ने व्यंग्य से कहा।

इतना सुनना था कि शाहजहां गुस्से से पागल हो गया। वह उसे मारने के लिए लपका। अमरसिंह पीछे हट गया। उसने अपनी तलवार खींच ली और शाहजहां की तरफ दौड़ा, पर शाहजहां भागकर अपने महल में घुस गया।

देखते-देखते दरबारियों और सैनिकों ने भी अपनी तलवारें खींच लीं।

अमरसिंह दरबार में तलवार घुमाता हुआ पीछे सरकता गया और धीरे-धीरे अपने घोड़े के पास पहुंचते ही वह उस पर सवार हो गया। जैसे ही उसने एड़ लगाई, उसका घोड़ा हवा से बातें करने लगा। अमरसिंह किले के दरवाजे की तरफ बढ़ा। लेकिन दरवाजा बंद था। वह किले के दूसरे दरवाजे की तरफ बढ़ा, पर वह भी बंद था। वह समझ गया कि उसे घेरा जा रहा है। शाही फौज उसका पीछा कर रही थी।

अमरसिंह अपने घोड़े पर सवार होकर हवा में तलवार लहराता हुआ शाही सैनिकों से लोहा ले रहा था। किले से भाग निकलने के चक्कर में वह अपने घोड़े पर सवार होकर पूरे किले के चप्पे-चप्पे को रौंद रहा था। ऐसा लगता था, जैसे किले के चप्पे-चप्पे पर अमरसिंह राठौर मौजूद हो।

अचानक अमरसिंह चारों तरफ से शाही सैनिकों से घिर गया। तभी उसने घोड़े को जोर से एड़ लगाई। घोड़ा रास्ता बनाता हुआ किले के एक तरफ बनी सीढ़ियों से होकर

किले की दीवार पर चढ़ गया। अब सामने बेहद चौड़ी खाई थी और पीछे शाही सैनिक उसकी जान लेने पर उतारू थे। बच निकलने का कोई रास्ता नहीं था।

अमरसिंह ने घोड़े को प्यार से सहलाया और फिर एड़ लगाई। घोड़े ने लम्बी छलांग लगाई और आसमान से बातें करता हुआ खाई के उस पार जा पहुंचा। पर जमीन पर पहुंचते

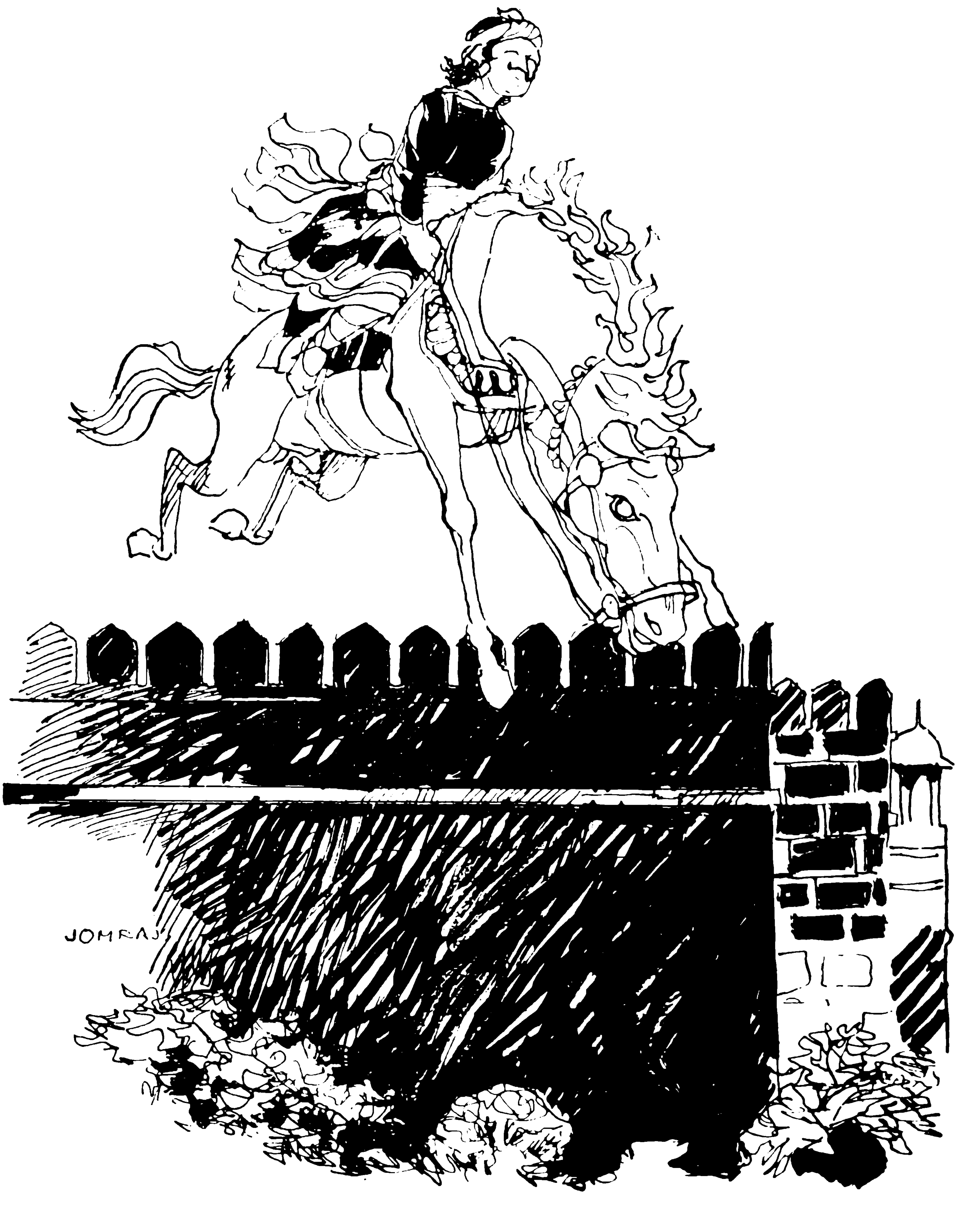

घोड़े ने किले के बुर्ज से लम्बी छलांग लगाई

ही उसके पैर कच्ची जमीन में धंसते चले गए। अमरसिंह ने शाबाशी देने के लिए घोड़े की पीठ थपथपाई, पर तब तक घोड़े के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। अमरसिंह धक् से रह गया। लेकिन शोक करने का समय न था। शाही सैनिक पीछे थे। घोड़े को वहीं छोड़, वह वहां से अदृश्य हो गया और शाही सैनिकों के हाथ नहीं आया।

शाहजहां गुस्से से पागल था। उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया—"मुझे किसी-न-किसी तरह इस गुस्ताख अमरसिंह का सिर चाहिए!"

शाही सैनिक अमरसिंह की खोज में चारों तरफ निकल पड़े। अर्जुन गौर को अमरसिंह के सब ठिकानों का पता था। वह बादशाह की नजरों में चढ़ने का और अमरसिंह से बदला लेने का यह सुअवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। अंतत: उसने अमरसिंह के छिपने के स्थान का पता लगा लिया। उसने अमरसिंह को जाल में फंसाने की योजना तैयार कर ली थी। जैसे ही अमरसिंह उसे दिखाई दिया, वह बोला—"अमरसिंह बादशाह को अपने किए पर बहुत पछतावा है। वह तुमसे माफी मांगना चाहते हैं और तुम्हारी बहादुरी के लिए तुम्हें इनाम भी देना चाहते हैं!"

अमरसिंह को अर्जुन गौर की बातों में कोई गहरी चाल नजर आई, पर उसे अपनी शूरवीरता पर पूरा भरोसा था। उसने यह भी सोचा कि वह चाहे जितना छिप ले आखिर-कार कभी तो पकड़ा ही जाएगा। इसलिए क्यों न अभी बादशाह से मिल लिया जाए। हो सकता है, अर्जुन गौर की बात में कोई सच्चाई ही हो!

वह अर्जुन गौर के साथ आगरा के लिए चल पड़ा। आगरा के किले में घुसते समय उसके मन में आशंका तो थी, पर भय बिलकुल नहीं था। वह अर्जुन गौर के साथ दरबार की तरफ बढ़ने लगा।

चलते-चलते सामने एक छोटा दरवाजा आया। अर्जुन गौर ने अमरसिंह को उसी से होकर गुजरने के लिए कहा। अमरसिंह को यह बात अपमानजनक लगी। छोटे दरवाजे से गुजरने का मतलब था—झुककर निकलना। दरबार में शाहजहां बैठा था। झुककर निकलने का मतलब था शाहजहां के सामने सिर झुकाना। वह नहीं चाहता था कि शाहजहां के सामने अपना सिर झुकाए। वह ठिठककर खड़ा हो गया।

"चलो न, अमरसिंह!" अर्जुन गौर बोला।

'क्या सिर झुकाकर निकलना होगा?" अमरसिंह ने पूछा।

"और क्या! सिर झुकाए बिना कैसे निकलोगे? सिर दीवार से टकरा नहीं जाएगा क्या?" अर्जुन गौर ने कहा।

"नहीं ! हम सिर नहीं झुकाएंगे। हमने कोई गुनाह नहीं किया है।" अमरसिंह ने दृढ़ता से कहा।

"तो फिर कैसे निकलोगे इस छोटे दरवाजे से ?" अर्जुन गौर ने हैरत से कहा।

अमरसिंह राठौर ने दो क्षण सोचा। फिर बोला—"हम इस दरवाजे में पैरों के बल घुसेंगे और धीरे-धीरे सरककर सिर को बाद में निकालेंगे। इस तरह हमारा सिर बादशाह के सामने नहीं झुकेगा।" कहते-कहते अमरसिंह ने अपनी योजनानुसार दरवाजे में प्रवेश किया।

जैसे ही अमरसिंह ने दरवाजे में प्रवेश किया, वैसे ही अर्जुन गौर बिजली की तरह झपटा और तलवार के एक ही वार से अमरसिंह का सिर धड़ से अलग कर दिया।

अमरसिंह का सिर जब शाहजहां के सामने पेश किया गया, तो वह धक् से रह गया। इतने बहादुर सिपाही को खोकर उसे बहुत दुख हुआ। पर अब क्या हो सकता था ? शाहजहां हाथ मलता रह गया : उसे अफसोस था कि कुछ गलत लोगों के बहकावे में आकर उसे अपने एक जांबाज सैनिक से हाथ धोना पड़ा। उसने उसके साहसी घोड़े की स्मृति में पत्थर का घोड़ा बनवाया और उसी स्थान पर उसकी मूर्ति स्थापित की, जहां गिरकर उस बहादुर घोड़े ने अपने प्राण छोड़े थे।

11. एक और एंड्रोक्लीज

एंड्रोक्लीज का नाम तो आपने सुना ही होगा। वह अफ्रीका का एक नीग्रो गुलाम था। उसके मालिक उसे भूखा रखते थे और उससे कसकर काम लेते थे। एक दिन वह परेशान होकर भाग गया। भागते-भागते उसे एक शेर मिला, जो दर्द से तड़प रहा था। एंड्रोक्लीज उस शेर के पास गया। उसने देखा कि शेर के एक पैर में कांटा चुभा हुआ है, जिससे खून रिस रहा है। एंड्रोक्लीज ने वह कांटा निकाल दिया।

बाद में शेर ने अपनी कृतज्ञता इस रूप में दिखाई कि भूखा होने पर भी उसने एंड्रोक्लीज को नहीं खाया।

हुआ यह कि बहुत कोशिश के बावजूद एंड्रोक्लीज अपने मालिकों की निगाह से नहीं बच सका और एक दिन पकड़ा गया। मालिकों ने उसे सजा के तौर पर भूखे शेर के सामने छोड़ दिया, किंतु शेर ने उसे खाया नहीं, बल्कि वह प्यार से उसके तलवे चाटता हुआ उसके सामने दुम हिलाने लगा। सब लोग यह दृश्य देखकर दंग रह गए। एंड्रोक्लीज खुद भी अचरज में पड़ गया, पर थोड़ी ही देर में वह पहचान गया कि वह भूखा शेर कोई और नहीं, बल्कि वही शेर था जिसके पैर में से उसने कांटा निकाला था। शेर के मन में उमड़े प्यार और कृतज्ञता को देखकर एंड्रोक्लीज की आंखों में भी आंसू आ गए।

यह रोचक प्रसंग बहुत पुराने जमाने का है। शेर और मनुष्य के बीच की दोस्ती इस प्रसंग की रोचकता को बढ़ाती है।

बहुत बाद में जाकर एक ऐसी ही रोचक घटना हुई, जिसमें शेर ने अपने सामने खड़े आदमी को चूं तक नहीं कहा और इस आश्चर्यजनक घटना की वजह शेर और आदमी के बीच की दोस्ती नहीं, बल्कि यह थी कि शेर के मन में उस आदमी के प्रति भय उत्पन्न हो गया था। है न अचरज की बात! यह कोई काल्पनिक कहानी नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक सत्य है!

यह घटना उस समय की है, जब देश में प्रसिद्ध मुगल बादशाह औरंगजेब का शासन था। औरंगजेब अपनी क्रूरता और कठोरता के लिए बहुत प्रसिद्ध रहा है।

एक दिन औरंगजेब अपने दरबार में बैठा था। दरबार में बड़े-बड़े दरबारी और अमीर-उमरा अपने-अपने पद के हिसाब से अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए थे। बादशाह औरंगजेब के सामने कुछ आवश्यक शासकीय पत्र रखे हुए थे। वह उन्हें देखने में व्यस्त था। वह कागजात देखता जा रहा था और उन पर आदेश देता जा रहा था।

कुछ देर बाद औरंगजेब के सामने एक आदमी पेश किया गया। वह देखने में बहुत बलशाली नजर आता था। हट्टा-कट्टा और गठीला शरीर, ऊंचा मस्तक, भरा हुआ तेजस्वी चेहरा, उस पर तनी हुई बड़ी-बड़ी मूछें, सब मिलकर उसके बांकपन का परिचय दे रहे थे। उसका नाम था मुकुन्द दास। वह जोधपुर का बांका राजपूत था और बादशाह औरंगजेब के आदेश पर उसे जोधपुर से दिल्ली के किले में बुलाया गया था। शाही दरबार में उसकी तकदीर का फैसला होने वाला था।

"हुजूर ! दरबार में हाजरी देने मुकुन्द दास आया है, जोधपुर से !" पेशकार ने कहा।

बादशाह औरंगजेब ने अपनी नजर उठाई और सामने खड़े हुए राजपूत मुकुन्द दास को देखा। वह उसे देखता ही रह गया। इतने सुन्दर, सुडौल और बलिष्ठ शरीर का धनी यह नवयुवक क्या वही मुकुन्द दास है, जिसे हमने जोधपुर से बुलवाया है ! यही है वह हठीला नौजवान, जिसने हमारे आदेशों की अवहेलना की है ! बादशाह उसे देख रहा था और मन-ही-मन सोचता चला जा रहा था।

सहसा औरंगजेब की त्योरियां बदलीं और उसके होंठ फड़कने लगे।

वह आवेश में बोला—"इसकी यह मजाल कि यह शाही हुक्म का अपमान करे ! इसको इसकी बेअदबी की सजा मिलनी ही चाहिए। ले जाओ इसे और सामने शेर के कटघरे में छोड़ दो ताकि इसे शाही फरमान को न मानने का नतीजा पता चले और औरों को भी नसीहत मिले कि हुक्म-उदूली का क्या नतीजा होता है !"

बादशाह की बात सुनकर उस वीर राजपूत के होठों पर मुस्कान फैल गई। वह बादशाह की तरफ देखकर होठ टेढ़े करते हुए मुस्कराया। उसकी मुस्कान में एक तीखा व्यंग्य था। इस व्यंग्य ने बादशाह के हृदय को घायल करने के लिए पैने और विषैले तीर का काम किया।

औरंगजेब को उस राजपूत युवक की मुस्कान उद्दण्डता लगी। आवेश में आकर वह बोला, "तुम मुस्करा क्यों रहे हो ? तुम्हें हमारा जरा-सा भी खौफ नहीं ! क्या तुम यह नहीं जानते कि तुम्हारी इस बदतमीजी का क्या नतीजा निकलेगा ? हमने तुम्हें सजा दी है, वह भी शेर के कठघरे में डालने की और तुम हो कि मुस्करा रहे हो !"

"शेर के कटघरे में डलवा देने से बड़ी सजा आप दे भी क्या सकते हैं, बादशाह ! शेर के कटघरे में जाने का नाम ही मौत है।" युवक ने निर्भीकता से कहा।

"तुम्हें मौत से डर नहीं लगता ?" औरंगजेब ने हैरत से पूछा।

"हुंह !...बादशाह ! अगर हम मौत से डरने लग जाएं, तो फिर हमारा जीना ही बेकार है। हम लोग तो मौत से पंजा लड़ाने के लिए ही पैदा होते और जिन्दा रहते हैं !" युवक ने अपनी उसी टेढ़ी मुस्कान और लापरवाही के साथ कहा।

दरबार के सभी लोगों की आंखें उस दबंग और निर्भीक राजपूत की तरफ लगी हुई

थीं। सभी के मन में कौतूहल था। बादशाह औरंगजेब भी युवक की इस निर्भीकता से हैरत में पड़ा हुआ था, पर उसे अपनी बादशाहत का भी ख्याल था। युवक की मन-ही-मन प्रशंसा करने के बावजूद वह अपने आदेशों को वापस नहीं ले सकता था।

आखिर युवक मुकुन्द दास को शेर के कटघरे के पास ले जाया गया। युवक वहां निर्भय खड़ा रहा। दरबारियों ने कटघरे का ताला खोला और युवक को उसके भीतर धकेलकर ताला लगा दिया। औरंगजेब इस दृश्य को बड़े मनोयोग से देख रहा था। कटघरे के भीतर एक विशालकाय सिंह चक्कर लगा रहा था। वह सिंह ऐसा भयावह था कि उसकी दहाड़ मेघ-गर्जन की याद दिला देती थी। उसकी चमकती हुई लाल-लाल आंखें और विकराल आकृति बड़े-से-बड़े साहसी योद्धा और पराक्रमी का भी दिल दहला देने के लिए काफी थी।

लेकिन मुकुन्द दास की बात ही कुछ और थी। वह सामान्य साहसी और पराक्रमी नहीं था। उसे दुष्यंत और शकुन्तला के पराक्रमी पुत्र भरत की कहानी अच्छी तरह मालूम थी, जिसने बचपन में ही सिंह का जबड़ा खोलकर उसके दांत गिन लिए थे। वह तनिक भी विचलित नहीं था।

कुछ देर बाद वह बड़े गम्भीर स्वर में सिंह को ललकारते हुए बोला—"ओ बादशाह के शेर ! अब तुझे राजा यशवंत सिंह के शेर का सामना करना है। जरा संभल जा !"

पर यह क्या ! लोगो के सामने एक अजीब दृश्य उपस्थित हुआ। वीर राजपूत मुकुन्द दास की अंगारे की तरह चमकती हुई लाल-लाल आंखों से शायद सिंह भी डर गया और उसने अपनी क्रूर और चमकदार आंखें नीची कर लीं। वीर राजपूत के आगे उस भयावह और रौद्र आकृति ने मस्तक झुका लिया। ऐसा लगा, जैसे वह सिंह मुकुन्द दास के आगे मस्तक नवाकर उस योद्धा को प्रणाम कर रहा हो। मुकुन्द दास कठघरे में खड़ा-खड़ा बड़े गर्व से अपना मस्तक ऊंचा किए हुए था और उसके सामने खड़ा सिंह अपना सिर झुकाए इस तरह पूंछ हिला रहा था, मानो वह कोई पालतू कुत्ता हो। देखते-देखते वह जंगल का राजा अपनी पूंछ दबाकर कठघरे के कोने में सिमटकर बैठ गया। मुकुन्द दास ने गर्व से अट्टहास किया।

सारे दरबारी बड़े कौतूहल से यह सारा दृश्य देख रहे थे। औरंगजेब भी यह नजारा देखकर स्तम्भित था, वह मन-ही-मन उस वीर राजपूत की निर्भीकता और साहसिकता पर मुग्ध हुए जा रहा था। साथ ही उसे सिंह का व्यवहार देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। क्या सिंह एक आदमी से भी डर सकता है ? वह सोच रहा था।

कुछ क्षणों के बाद मुकुन्द दास का धीर-गम्भीर स्वर सुनाई दिया—'देखा, बादशाह सलामत ! तुमने भी देखा, दरबारियो ! यह विशाल सिंह भी मेरा सामना करने का साहस नहीं जुटा पा रहा है और मेरे सामने किसी निरीह हिरन की तरह खड़ा हो गया है। और जो दुश्मन पूंछ हिलाकर, सिर झुकाकर अपनी बेबसी और लाचारी प्रकट कर रहा हो, उससे

मैं युद्ध करूं या उस पर किसी प्रकार का प्रहार करूं। यह बात मेरे जैसे राज
खिलाफ होगी। मैंने दया करके इस शेर को छोड़ दिया। अब मैं इस पर वार

सिंह ने मुकुन्ददास के आगे मस्तक झुका दिया

औरंगजेब और दरबार में बैठे सभी लोग इस दृश्य को देखकर चकित रह
मुंह से बरबस ही "वाह-वाह" और "धन्य-धन्य" की आवाजें निकलने लगीं। औरं
दृश्य देखकर मुकुन्द दास के पौरुष पर मुग्ध होकर रह गया। उसने मुकुन्द दास
क्षमा नहीं किया, बल्कि उसकी अद्भुत वीरता और साहसिकता की सराहना क
बहुत-सा इनाम भी दिया। दरबार की ओर से उसे 'नाहर खां' की उपाधि
उसका वीरोचित सम्मान किया गया।

इसके बाद वह 'नाहर खां' के नाम से देश-भर में विख्यात हुआ। उस समय दरबार में बैठे लोगों के मन में एक ही प्रश्न था कि यह नौजवान कौन था और उसने ऐसा क्या अपराध किया था कि उसे शेर के कठघरे में डालने की सजा दी गई ? तभी वहां बैठे एक दरबारी ने उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए बताया कि यह नौजवान, जिसका नाम मुकुन्द दास है, जोधपुर के महाराज यशवंत सिंह का पुराना सेवक तथा राठौर वीर दुर्गादास का अत्यंत प्रिय और विश्वस्त साथी है। एक बार बादशाह ने अपने एक दरबारी के माध्यम से मुकुन्द दास के पास एक पत्र भेजा था। उस पत्र की भाषा में शिष्टाचार नहीं था। पत्र को पढ़कर मुकुन्द दास ने स्वयं को अपमानित महसूस किया और उसने भी पत्र के उत्तर में अशिष्ट भाषा का प्रयोग करके अपने अपमान का बदला लिया था। यह अशिष्टता बादशाह को पसंद नहीं आई और उन्होंने उस अपमानजनक और अशिष्ट भाषा का प्रयोग करने पर उसे प्राणदंड की सजा देते हुए इस तरह की खतरनाक स्थिति में धकेला था। पर वाह रे यशवंत के शेर ! तूने भी कमाल ही कर दिया, जो सचमुच के शेर को भीगी बिल्ली बना दिया !

इस तरह मुकुन्द दाम ने एंड्रोक्लीज को भी मात दे दी थी।

12. बसई का विजेता

सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगालियों ने भारतीयों पर बड़े-बड़े अत्याचार किए थे, पर छत्रपति शिवाजी के उदय से उनकी हलचलें कम हो गईं। शम्भाजी ने तो गोवा पर चढ़ाई करके फोड़ा नामक स्थान पर उन्हें संधि करने के लिए विवश ही कर दिया और बसई तथा उसके आस-पास के क्षेत्र में चौथ वसूल करने का अधिकार प्राप्त कर लिया।

लेकिन छत्रपति राजाराम के समय में पुर्तगालियों ने एक बार फिर से सिर उठाया और अपने खोए इलाकों को फिर से प्राप्त कर लिया। यह सिलसिला बाजीराव पेशवा के पेशवा पद पाने तक चलता रहा। जब बाजीराव ने कल्याण और भिवंडो जीतकर वहां अपना अधिकार जमा लिया, तो बसई की जनता ने पेशवा से प्रार्थना की कि वह धर्म की रक्षा के लिए आगे आएं। बसई जिले के ब्राह्मणों ने बाजीराव पेशवा को यह पत्र लिखा—

"फिरंगियों ने बसई प्रांत में देवस्थान, तीर्थ तथा मराठी धर्म का लोप कर दिया है। हिन्दुओं को भ्रष्ट कर दिया गया है, अतएव आपको इस प्रांत पर कब्जा करके देवस्थापना तथा स्वधर्म की स्थापना करनी चाहिए।"

बाजीराव ने तुरंत बसई के पुर्तगाली अधिकारी को चेतावनी दी कि हिन्दुओं पर जो अत्याचार हो रहे हैं, वे ठीक नहीं हैं। या तो तुम लोग शांति से ईसाई धर्म का प्रचार करो या अपने देश चले जाओ।

पुर्तगाली अफसर ने इस पत्र का ठीक जवाब नहीं दिया। उसने इधर-उधर की बातें लिखकर विषय को टालना चाहा। तब बाजीराव ने फौरन अपने भतीजे चिम्पाजी को बसई पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी।

बसई का युद्ध 1731 से शुरू होकर दस वर्ष तक चला और 1741 में चिम्पाजी के हाथों समाप्त हुआ। सन् 1731 से लेकर 1738 तक भारत में पुर्तगालियों का प्रतिनिधि पिड्रो-मास्करिना कोटेड सांडोमिल था। वह बसई का किलेदार भी था और ठाणे की लड़ाई में मारा गया। उसके मरने के बाद सिलबेरा मेरोडिज किलेदार बनाया गया। वह भी बसई के युद्ध में घायल हुआ।

1737 से इस युद्ध ने उग्र रूप धारण कर लिया। मराठों ने पहले ठाणे के किले और आस-पास के किलों के अनेक हिस्सों पर कब्जा कर लिया। ठाणे, महीप, तारापुर और बसई आदि स्थानों में घमासान युद्ध हुए थे।

लाख प्रयत्न करने पर भी मराठों का बसई के किले पर अधिकार करना असम्भव था। इस किले के तीन ओर समुद्र था और केवल एक ही ओर से हमला करने का रास्ता था। वह रास्ता भी कीचड़, पानी और दलदल से भरा हुआ था। इसलिए किले को जीतना कठिन था। लेकिन मराठे बराबर डटे रहे। उन्होंने वहां के एक निवासी गंगाजी नाइक को मिलाया और पास के साष्ट्री के किले को ले लिया। फिर अन्नाजी कावले और भालाड़कर नामक दो व्यक्तियों को अपनी ओर मिलाकर छोटे-बड़े सभी किलों के सारे गुप्त रास्ते जान लिए।

बाजीराव ने जब अरनाला का किला ले लिया, तो पुर्तगालियों ने हिन्दू प्रजा पर बड़े-बड़े अत्याचार करने शुरू कर दिए। अब तो बाजीराव पेशवा ने हमेशा के लिए पुर्तगालियों को खदेड़ना चाहा। जब बाजीराव उत्तर भारत में मुगलों से लड़ रहे थे, तब ठाणे, महीप में पुर्तगालियों ने फिर से किलेबंदी आरम्भ कर दी थी। बाजीराव को इसकी खबर मिली, तो उन्होंने अपनी सेना भेजकर उसे नष्ट करा दिया। आस-पास के किले हाथ में आने पर भी बसई का सुदृढ़ किला अभी भी पुर्तगालियों के हाथ में था। रामचन्द्र पटवर्धन ने साष्ट्री तथा ठाणे के किले अपने हाथ में ले लिए।

सन् 1738 में चिम्पाजी ने बसई का किला लेने की योजना बनाई। ठाणे के एक भाग पर अभी भी पुर्तगाली झंडा फहरा रहा था। मल्हारराव होल्कर ने उस पर धावा बोला। पहले तो पैदल सिपाहियों ने हमला करके फाटक तोड़ा, फिर दुश्मन का सारा सैनिक साज-सामान नष्ट कर दिया। पुर्तगाली सेनापति पेड्रोडियेलो भी किले की रक्षा के लिए बड़ी बहादुरी से लड़ा, पर वह किले को न बचा सका। लड़ते-लड़ते अंत में वह मारा गया। उसकी बची-खुची सेना बसई के किले में जा छिपी। मराठों ने यहां भी पीछा किया, पर किले की बुर्ज पर से तोपों की भयंकर मार ने उन्हें पीछे हटा दिया। पीछे हटती हुई यह सेना माही (महीप) की ओर चली। यहां भी पुर्तगालियों ने मोर्चाबंदी कर रखी थी। शिंदे और होल्कर का भी एक टुकड़ी आ गई। करीब हजार-बारह सौ मराठों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर महीप का किला भी ले लिया।

बसई के चारों ओर पर्वतों की माला के साथ-साथ चारों ओर किलों की भी माला थी, जिससे पुर्तगालियों की रक्षा होती थी। एक के बाद एक किले मराठों ने अपनी वीरता से जीत लिए। अब बसई की बारी आई। किले की रक्षा असम्भव जान, किलेदार सिलवेरा मेनेडिज ने आदेश जारी किया—

"किले के भीतर रहने वालों को आगाह किया जाता है कि वे किसी भी प्रकार दुश्मन की मदद न करें। अगर कोई पकड़ा जाएगा, तो किले की बुर्ज पर से तोप से उड़ा दिया जाएगा। सभी अंग्रेज कैद कर लिए जाएं, क्योंकि वे हमारे दुश्मनों से मिले हुए हैं। उन्होंने कर्ज न देकर मराठों को लड़ाई का सामान दिया है। यदि कोई व्यक्ति पुर्तगाली सरकार के विरुद्ध काम करते पकड़ा जाएगा, तो वह या तो जहाज पर से समुद्र में फेंक दिया

जाएगा या बसई की खाई में गाड़ दिया जाएगा। जो लोग पुर्तगाल सरकार की मदद करेंगे, उन्हें बड़े-बड़े खिताब लेंगे ! सभी मराठों के हथियार छीन लिए जाएं। गिरजाघरों पर पहरा दिया जाए और यदि गिरजाघर की एक भी ईंट गिरी, तो गिराने वाले को जिंदा जला दिया जाएगा। बाइबिल या बंदूक हमारा ध्येय है। चाहे जैसे हो, ईसाई धर्म का प्रचार ही हमारा लक्ष्य है। हरेक ईसाई क्रास पहने रहे।"

किलेदार के इस आदेश से किले के भीतर की सारी प्रजा भयभीत हो गई, पर मराठों ने उनके साथ संतों के माध्यम से बातचीत जारी रखी। कुछ पत्र पकड़े भी गए और पत्र-वाहकों को उसी समय किले की बुर्ज पर रखी तोप से उड़ा दिया गया।

किले के भीतर जो-जो अत्याचार पुर्तगाली कर रहे थे, उन सबका पता चिम्पाजी को लगता रहता था। बसई के किलेदार के आदेश की नकल भी चिम्पाजी के पास पहुंच गई। उन्होंने भी एक आदेश जारी कर दिया—

"मैं पेशवा के सेनापति की हैसियत से बसई की सारी प्रजा को सूचित करता हूं कि बसई में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह किसी भी धर्म को मानता हो, अभयदान दिया जाता है। सबके जान-माल की रक्षा होगी। चाहे कोई ईसाई हो या पुर्तगाली, अंग्रेज, सिद्दी मुसलमान, डच अथवा डेन हो, सबकी रक्षा का भार हमारे मराठे सिपाहियों पर है। अगर किसी पर जोर-जुल्म हो, तो वह मुझसे कहे। मैं बिना दंड दिए नहीं मानूंगा। ईसाइयों के हटने-बढ़ने में उनके बाल-बच्चों पर कोई जोर-जुल्म न हो। कोई गिरजाघर ढहाया न जाए। दो-चार दिनों के भीतर ही मराठे किला ले लेंगे।"

इस आदेश के निकलते ही बहुत से ईसाई जो बसई के किले के बाहर बसे थे, गोवा, दमन, दीव को चल दिए, पर उन्हें लूटा नहीं गया। ठाणे, महीप, चिउल तथा तारापुर में मराठों की चौकी का पहरा बैठ गया। शासन की पूरी व्यवस्था हो गई। अब केवल बसई के किले को लेना बाकी था। मराठों की सारी शक्ति एक जगह केन्द्रित हुई। बड़े-बड़े युद्ध-महारथी बसई के चारों ओर डेरा डाले हुए थे। सब घात लगाकर बैठे थे। लेकिन बसई के किले पर विजय नहीं मिल पा रही थी, इसलिए मराठों के मन में निराशा थी।

चिम्पाजी भी परेशान थे। बाजीराव पेशवा ने जो जिम्मेदारी सौंपी थी, उसे वह पूरा नहीं कर पा रहे थे। एक दिन वह बड़े चिंतित होकर तोप के सामने खड़े हो गए और तोपची से बोले—"तोपची। तोप दागो। कम-से-कम मेरे शरीर का कोई हिस्सा तो बसई के किले के भीतर जाकर गिरेगा !"

चिम्पाजी अप्पा के सरदारों में सनसनी फैल गई।

"श्रीमान, हम लोगों के रहते आप ऐसा क्यों कहते हैं ! हम सब तो अभी तैयार ही हैं।" बहुत साहस करके यह कहते हुए ऊबाजी पंवार ने चिम्पाजी के सामने अपनी तलवार

चिम्पाजी अपने साथियों से विचार-विमर्श करते हुए

रख दी और फिर कहा, "आज या तो यह तलवार लेकर मैं किले में घुसूंगा या खाई में गिरकर समाप्त हो जाऊंगा !"

"नहीं पंवारजी, आप ऐसा न कहिए ! जब तक मल्हारराव मौजूद है, ऐसा नहीं होगा।" मल्हारराव ने कहा।

चिम्पाजी चुप रहे। फिर कुछ रुककर बोले—"ब्रजेन्द्र स्वामी के ही आशीर्वाद से मैं बसई को विजय करने चला था। छः महीने से मैं बसई पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूं, पर अभी तक बसई के किले पर भगवा निशान न फहरा सका। भला, मैं पेशवाजी को कैसे मुंह दिखाऊंगा!'

इसी समय पिलाजी गायकवाड़ ने ढाढ़स बंधाते हुए कहा—"चिम्पाजी, आपके प्रयत्न में कोई कोर-कसर नहीं, पर आप भाग्य और संयोग का क्या करेंगे?"

"देखो पिलाजी, भाग्य और संयोग पर विश्वास करना चिम्पाजी नहीं जानता। वह सिर्फ एक बात जानता है—करो या मरो। बसई के किले में दाखिल हुए बिना मेरी आत्मा को संतोष नहीं मिलेगा। इन पुर्तगाली फिरंगियों के अत्याचार से मेरा हृदय जल रहा है। मुझे उनसे बदला लेना है।" यह कहते हुए चिम्पाजी ने अपनी तलवार म्यान से खींच ली।

शिंदे ने कहा—"श्रीमान! अब तो बसई लिए बिना हटना नहीं है। चाहे मरकर या जीकर!"

तभी मल्हारराव ने कहा—"श्रीमान! मुझे किले के गुप्त मार्ग मालूम हो गए हैं। अन्नाजी कावले ने अपना एक गुप्तचर भेज दिया था। मैंने उससे सभी मार्ग जान लिए हैं।"

चिम्पाजी ने भगवा निशान मगाकर उसकी पूजा की। उन्होंने कहा—"गुरु रामदास! मैं केवल धर्म की रक्षा के लिए ही नर-संहार कर और करा रहा हूं। मेरा इसमें कोई दोष नहीं।" यह कहते हुए उन्होंने गद्दी से उतरकर किले की ओर प्रणाम किया। वेंकटराव की टुकड़ी भी आ पहुंची। बाजीराव भीम का लड़का भी तोपखाने सहित मैदान में आया और सलामी देकर पिता की तरह मरने की इच्छा जाहिर की।

'हर-हर महादेव' की जयध्वनि के साथ मराठी फौज ने हमला कर दिया। वेंकटराव ने उत्तरी फाटक से अपने एक हजार सैनिक दौड़ाए। शिंदे अपनी पैदल सेना लेकर दलदल में घुसा। जहाजियों ने खाड़ी से तोप दागनी आरम्भ की। अब तो पुर्तगाली बुरी तरह फंस गए। बाजी भीमराव का लड़का तोपों सहित मौके पर पहुंच गया। पुर्तगाली भी तोप दागने लगे। उस समय का दृश्य बड़ा ही भयावह था। एक तो मराठा फौज को दलदल से होकर जाना पड़ रहा था, दूसरे बुर्जियों पर से तोपों की मार उनका बहुत कुछ नुकसान कर रही थी। लेकिन वीर मराठे बराबर आगे बढ़ते ही जा रहे थे।

पुर्तगालियों ने किले के भीतर से ऐसी सुरंग बनाई थी, जिससे किले के अन्दर से ही आग लगाने पर बाहर लगातार विस्फोट हो रहा था। इस विस्फोट से मराठा सेना बहुत बड़ी संख्या में नष्ट हो रही थी। लेकिन शिंदे की पैदल सेना खाई-खंदकों को पार करती हुई, सुरंगों की भीषण ज्वाला में भस्म होते हुए भी, किले के फाटक तक पहुंच गई।

संयोग से इसी समय बाजीराव भीम के लड़के अन्नोजी की तोपें बराबर गोले उगल रही

थीं। एक गोला फाटक पर पड़ा। फाटक चरमराकर टूट गया। मराठा फौज ने भीतर घुसने की कोशिश की, पर गोलियों की बौछार से वह पीछे हटने लगी।

तभी चिम्पाजी के अंगरक्षक पहुंच गए। उन्होंने चिल्लाकर कहा—"खबरदार! पीछे क्यों हट रहे हो!" और यह कहते हुए चिम्पाजी की अंगरक्षक सेना गोलियों की बौछारों के बीच आगे बढ़ी। बहुत से सैनिकों के शरीर छलनी होकर वहीं फाटक पर गिर पड़े। पीछे की सेना उनके ऊपर से होती हुई, शवों को रौंदती, ठेलती भीतर घुसी। किले के भीतर 'हर-हर महादेव' की जयध्वनि से पुर्तगाली सेना घबराई, पर पुर्तगालियों ने फाटक का ऐसा प्रबंध कर रखा था कि एक फाटक के टूटते ही भीतर का दूसरा फाटक बंद हो गया। सारी अंगरक्षक सेना मारी गई। फाटक पर फिर पुर्तगालियों का अधिकार हो गया।

सूर्य भगवान अस्ताचल में पहुंच गए थे। वह भी इस प्रकार अस्त हो रहे थे, मानो मराठों का मरना उनसे देखा न जा रहा हो। असंख्य मराठों के मरने से एक बार चिम्पाजी के चेहरे पर चिंता की रेखा दौड़ गई। उन्होंने शिंदे की दूसरी टोली को हमला करने का आदेश दिया। एक हजार मराठों ने जोर-शोर से हमला किया। अन्नाजी की तोप से दीवार का बहुत सा हिस्सा टूट चुका था। हालांकि अब मराठा फौज अंदर घुस सकती थी, पर दीवारों को फांदने में बहुत से सैनिकों को मरना पड़ता।

वेंकटराव ने नई फौज लेकर फिर धावा किया। पैदल फौज बंदूक लिए हुए किले की ओर चली। समुद्र की तरफ से भी मार शुरू हुई। अब चारों ओर से गोलाबारी होने लगी। इस गोलाबारी को पुर्तगाली न सह सके। डिसोजा पेरिरा ने किले के भीतर सफेद झंडा फहरा दिया।

यह देखकर मराठों ने गोलाबारी रोक दी और शांति का बिगुल बजा दिया। इसके साथ ही 'हर-हर महादेव' की जयध्वनि से आकाश गूंज उठा। पांच घंटे बाद मराठों की फौज ने किले में प्रवेश किया। किलेदार ने आगे बढ़कर अपनी तलवार चिम्पाजी अप्पा के चरणों में रख दी। चिम्पाजी ने कहा—"पेरिरा, किसी बात की चिंता न करो! जो घोषणा की गई है, उससे मैं तिल-भर भी नहीं हटूंगा। किसी भी ईसाई की सम्पत्ति नष्ट नहीं की जाएगी और न ही किसी की जान ली जाएगी। आप सब सुरक्षित हैं। जो कुछ शर्तें तय होंगी, उन्हीं के अनुसार मराठों की हुकूमत चलेगी।"

पुर्तगाली किलेदार ने मराठों की सब बातें मान लीं। दूसरे दिन किले के भीतर जितने ईसाई थे, सब अपना सामान ले जाने लगे। मराठों ने उन्हें बाल-बच्चों के साथ जहाज तक पहुंचा दिया।

सारा भारत आज भी बसई की इस विजय का गुणगान करता है।

13. रानी—जो पुरुष वेश में लड़ी

एक समय था, जब दक्षिण भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित मालाबार क्षेत्र के लोगों ने अपनी निजी संस्कृति और पहचान बनाई थी। उत्तर भारत के राजपूतों की तरह मालाबार के नायर भी बलशाली योद्धा थे। वे अपनी स्वतंत्रता के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते थे। वहां पुरुष ही नहीं, महिलाओं को भी सैन्य-प्रशिक्षण दिया जाता था। वहां के साहित्य में प्रेम और युद्ध की गाथाओं को प्रमुख स्थान दिया जाता रहा है। इन गाथाओं में देश के गौरव के लिए बलिदान हो जाने वाले वीरों का वर्णन होता है। इन्हीं गाथाओं में माथिलेरि कन्नी की करुण कहानी भी है। इस गाथा में माथिलेरि कन्नी और उसके पति, जो कि वेनाद का राजा था, की प्रेमकथा है।

माथिलेरि कन्नी, कोलाथिरी राजा के सेनापति वभ्रुन्नावर की इकलौती पुत्री थी। अपने सेनापति के पराक्रम और शौर्य से प्रसन्न होकर कोलाथिरी राजा ने उसे अपने राज्य के चिराकारा प्रांत का सर्वेसर्वा बना दिया था।

माथिलेरि के जन्म के कुछ समय बाद ही उसकी मां की मृत्यु हो गई। उसके पिता ने ही उसका लालन-पालन किया, उसकी सारी देखभाल की तथा उसे सैन्य-प्रशिक्षण दिया। सत्रह वर्ष की आयु में वह शस्त्र-संचालन और शासन-कला में निपुण हो गई। यह देखकर उसके पिता ने राज्य के शासन का कार्यभार उसी के कुशल हाथों में सौंप दिया।

एक दिन माथिलेरि कन्नी अपनी दासी के साथ थालापोलि उत्सव देखने गई। इस उत्सव में युवतियां एक थाली में दीपक, नारियल और फूल लेकर वलारमुंदकुवु मंदिर में जाती हैं। वेनाद का युवा राजा भी यह उत्सव देखने आया था। माथिलेरि और युवा राजा ने एक-दूसरे को देखा और प्रथम दृष्टि में ही दोनों प्रेमपाश में बंध गए।

कुछ समय बाद ही दोनों का विवाह हो गया। विवाह के बाद कुछ दिनों तक वे दोनों माथिलेरि महल में रहे, किन्तु वे अधिक दिन तक विवाह का सुख नहीं भोग सके। विवाह के सात दिन बाद ही वेनाद से समाचार आया कि ओदानाड का राजा पंड्यानाड के राजा की मदद से वेनाद पर हमले की तैयारी कर रहा है। हमले की सूचना पाकर वेनाद का राजा तुरन्त अपने राज्य को लौट गया और युद्ध की तैयारी में जुट गया।

चिरावा मनालपुरम में घमासान युद्ध हुआ। तीन वर्ष तक यह युद्ध चलता रहा। वेनाद का राजा अपने ससुर को युद्ध की ताजा स्थिति से अवगत कराता रहा, लेकिन साथ ही वह

अपने ससुर से यह भी अनुरोध करता रहा कि कन्नी को इसकी सूचना न दी जाए। कहीं ऐसा न हो कि वह परेशान हो उठे।

अपने दामाद की भावना का आदर करते हुए वभुन्नावर ने अपनी पुत्री को इसकी कोई जानकारी नहीं दी।

कन्नी अपने पति की ओर से चुप्पी का कोई कारण नहीं जान पाई। पति की चुप्पी से वह बेचैन हो उठी। उसका पिता उससे सहानुभूति तो जता रहा था, किन्तु वह कुछ बता पाने में असमर्थ था। वह अपने दामाद की इच्छा के आगे विवश था। कन्नी परेशान होकर सोचती रहती कि वेनाद के राजा को क्या हो गया है? कहीं वह उसे भूल तो नहीं गया?

धनु माह (पूस का महीना) का थिरुवथिर दिवस मालाबार की महिलाओं के लिए शुभ दिन माना जाता है। कहा जाता है कि इसी दिन पार्वती ने शिव के प्रति अपने प्रेम की कामना की थी। इस दिन पति अपनी पत्नियों को वस्त्र और आभूषण उपहार में देते हैं। लेकिन उस दिन भी जब वेनाद के राजा की कोई सूचना नहीं मिली, तो कन्नी का दिल टूट गया। वह अपने पिता के पास गई और कह उठी, "ऐसा पति किस काम का, जो ओणम और थिरुवथिर के शुभ दिन पर भी अपना पत्नी की सुध नहीं लेता।"

यह सुनकर कन्नी के पिता का धैर्य जवाब दे गया। अब और अधिक चुप रहना असह्य था। उसे स्पष्ट दीखने लगा कि उसकी बेटी अपने पति की नीयत पर संदेह कर रही है। उसे आशंका हुई कि इस संदेह के भयंकर परिणाम होंगे। उसने सोचा कि ऐसी स्थिति और अधिक देर तक बने रहना घातक होगा। उसने अपनी बेटी को सारी बात बता दी। कन्नी ने पिता की पूरी बात सुनी। संदेह और पीड़ा की बजाय अब उसे पश्चात्ताप होने लगा। उसने सोचा कि इतने स्नेहशील पति पर संदेह करके उसने उस पर अत्याचार किया है। वह स्वयं को कोसने लगी कि उसका पति युद्ध में घिरा है और वह यहां आराम से सत्ता का आनंद ले रही है।

जब वेनाद से अगला पत्र आया तो वभुन्नावर ने उसे कन्नी को पढ़ा दिया। राजा ने लिखा था—"मेरी सेना के तमाम दस हजार सैनिक और सेनापति युद्ध में मारे गए और मैं बड़ी मुसीबत में फंसा हुआ हूं।...क्या आप कोई योग्य सेनापति भेज सकते हैं?" साथ ही हमेशा की तरह उसने यह भी लिखा था—"कृपया कन्नी को इस बारे में कुछ न बताएं।"

पहले तो कन्नी खुश हुई कि उसका पति कितना नेक और स्नेहशील है, फिर वह स्थिति की गंभीरता समझकर बेचैन हो गई। उसने इस संकट के समय में पति के पास जाने का फैसला किया। उसने अपने पिता को पत्र लौटा दिया और बोली—"पिताजी!"...

इससे आगे वह कुछ नहीं बोल सकी। वभुन्नवर ने उसकी ओर देखा और समझ लिया कि कन्नी मन-ही-मन कोई फैसला कर चुकी है।

कुछ देर बाद कन्नी बोली—"पिताजी, अपनी बेटी को आशीर्वाद दीजिए। मैंने फैसला कर लिया है कि वेनाद की सेना का नेतृत्व मैं संभालूंगी और ओदानाड को परास्त करूंगी। आपको किसी सेनापति को खोजने की आवश्यकता नहीं है। आप मुझे भेज दें!"

यह कहकर वह अपने कक्ष में गई और पुरुष-वेश धारण करके पुनः अपने पिता के सामने आ खड़ी हुई। वभ्नुन्नावर अपनी पुत्री को पुरुष-वेश में देखकर प्रसन्न हुआ। वह जानता था कि कन्नी को उसके निश्चय से डिगाया नहीं जा सकता। उसने कन्नी को आशीर्वाद दिया और वेनाद जाने की स्वीकृति दे दी।

वेनाद के राजा ने चिरावा में डेरा डाला हुआ था। वह अपने डेरे में बैठा युद्ध की रण-नीति तय कर रहा था, तभी एक युवा सैनिक उसके सामने उपस्थित हुआ। उसने बताया कि उसे वभ्नुन्नावर ने मदद के लिए सेनापति बनाकर भेजा है। उसने वभ्नुन्नावर का पत्र भी दिया। नवांगतुक को देखकर राजा आश्वस्त नहीं हो पाया, फिर भी वह वभ्नुन्नावर का पत्र पढ़कर कुछ उत्साहित अवश्य हुआ और उसने उसे अपना सेनापति नियुक्त कर लिया। इस नए सेनापति पोन्नन को उसका मोर्चा बता दिया गया।

नया सेनापति आठ हजार सैनिक लेकर मोर्चे पर डट गया। युद्ध में सेनापति ने अद्भुत कौशल दिखाया। उसने सैनिकों को प्रेरित किया और मदद भी पहुंचाई। वेनाद की सेना ने भी नए जोश और उत्साह से युद्ध किया। पहले दिन ही वेनाद की सेना मोर्चे पर काफी आगे बढ़ गई।

रोज रात को सैनिकों को विश्राम का आदेश देकर सेनापति अपने महल में आ जाता।

सात दिन में ओदानाड की सेना पूरी तरह खदेड़ दी गई। ओदानाड के राजा ने हार मान ली। युवा सेनापति पोन्नन ने वेनाद के राजा को यह सूचना दी और अपने वतन लौटने की आज्ञा मांगी।

वेनाद का राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। वह युवा सेनापति के युद्ध-कौशल को देखकर चमत्कृत था। वतन लौटने की बात सुनकर उसे अच्छा नहीं लगा। वह नहीं चाहता था कि सेनापति इतनी जल्दी वापस चला जाए। वह बोला—"सेनापति! हम तुम्हारी वीरता और चतुराई से बेहद प्रभावित हुए हैं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम कुछ दिन यहीं रहो और राजकाज में हमारी मदद करो? मेरा ख्याल है, तुम हमारे अनुरोध को टालोगे नहीं!"

बेचारी कन्नी यह सुनकर परेशानी में पड़ गई। अपने पति के साथ रहकर प्रशासन में सहायता करना जरूरी और महत्वपूर्ण था लेकिन वह मन-ही-मन आशंकित थी कि कहीं उसके पुरुष-वेश का भेद न खुल जाए।

वेनाद के राजा की एक छोटी बहन थी, जिसे वह बहुत चाहता था। राज्य के नियमों के अनुसार वह राजकुमारी गद्दी की उत्तराधिकारिणी भी थी। सेनापति के शौर्य और कौशल की बातें सुनकर वह उसके प्रति मन-ही-मन आसक्त हो गई। एक दिन उसने सेनापति को अपने निजी कक्ष में बुलवाया। राजकुमारी ने उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रख दिया। कन्नी के मन में अपराध-बोध जागृत हुआ और वह सोचने लगी कि अपने आचरण से मैंने राजकुमारी को धोखे में रखा है। वह राजकुमारी की बात का कोई उत्तर न दे सकी। वह

पुरुष वेश में लड़ते हुए रानी माखिलेरि कन्नी

चुप रही। उधर राजकुमारी को भी सेनापति के इस रूखे और ठंडे व्यवहार से निराशा हुई। जब उसने देखा कि उसके अनुरोध और अनुनय-विनय का सेनापति पर कोई असर नहीं पड़ा, तो हताश होकर उसने अपनी कमर से कटार निकाल ली और अपनी ही छाती में भोंकने लगी। सेनापति ने तुरन्त उसका हाथ पकड़ लिया और स्नेह से उसकी कमर थपथपाते हुए

बोला —"राजकुमारी, यह मत सोचो कि मैं तुम्हें प्यार नहीं करता। लेकिन मैंने एडामंदकावु में देवी के सामने प्रतिज्ञा की है कि युद्ध में जीतने के बाद मैं जब तक उनके मंदिर में प्रार्थना नहीं कर लूंगा, तब तक किसी महिला को हाथ नहीं लगाऊंगा। राजकुमारी मुझे छुट्टी दे दो, ताकि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकूं।"

राजकुमारी मान गई और उसने उसे जाने की छुट्टी दे दी। कन्नी को वेनाद से छुटकारा पाने का अच्छा मौका मिल गया। अगले दिन भोर होने से पहले ही वह अपने घर के लिए रवाना हो गई।

वेनाद के राजा को सेनापति के चले जाने का समाचार मिला, तो उसे बहुत दुख हुआ। तभी उसे ध्यान आया कि युद्ध जीतने के बाद, अब उसे पत्नी के पास जाकर सारी बात बता देनी चाहिए और उसे कुछ भी जानकारी न देने के लिए माफी मांगनी चाहिए। सब कुछ जानकर वह कितनी प्रसन्न होगी!

राज्य का कार्य अपने छोटे भाई को सौंपकर वेनाद का राजा अपनी पत्नी से मिलने चिराकारा चल दिया। रास्ते में वह चूरियामनी महल में रुका, जो माथिलेरि कन्नी के चाचा का था। राजा बरगद के पेड़ के नीचे विश्राम कर रहा था कि वहां की राजकुमारी चूरियामनी कन्नी की नजर उस पर पड़ी। यह जाने बिना कि वह अतिथि कौन है, राजकुमारी उस पर मुग्ध हो गई और उसने उससे विवाह करने का निश्चय कर डाला। उसने अपनी मां को अपना निश्चय बताया, तो मां सकते में पड़ गई। बोली—"तुम्हें मालूम नहीं कि यह वेनाद के राजा हैं और तुम्हारी चचेरी बहन माथिलेरि कन्नी के पति हैं। इस तरह रिश्ते में वह तुम्हारे बहनोई लगते हैं।"

लेकिन राजकुमारी चूरियामनी पर मां की बातों का कोई असर नहीं हुआ। उसने मन में ठान लिया था कि वह राजा से विवाह करके रहेगी और अपना निश्चय पूरा करने के लिए वह किसी मौके का इंतजार करने लगी।

एक दिन वह मौका भी आ गया। माथिलेरि कन्नी बलकल मंदिर जाते हुए चूरियामनी से मिलने आई। दोनों गले मिलीं। उन दोनों ने हो पूरा दिन हंसी-खुशी के साथ बिताया। तभी चूरियामनी ने सुझाया—"माथिलेरि, इस बार पूरम उत्सव हम साथ-साथ मनाएंगे!"

माथिलेरि कन्नी ने बड़ी खुशी से यह सुझाव मान लिया।

पूरम उत्सव से एक दिन पहले ही चूरियामनी अपनी चचेरी बहन माथिलेरि के पास चिराकारा पहुंच गई। माथिलेरि बड़ी प्रसन्न हुई। उसने अपने पति से उसका परिचय कराया।

चूरियामनी ने देखा कि वेनाद का राजा माथिलेरि को बेहद प्यार करता है। ऐसे में जब तक माथिलेरि जीवित है, तब तक मैं वेनाद के राजा को नहीं पा सकूंगी।

माथिलेरि को अपने रास्ते से हटाने के लिए चूरियामनी ने एक षड्यंत्र रचा। उसने पूरम उत्सव के लिए पकवान तैयार करने वाली अपनी एक विश्वासपात्र दासी को सिखा दिया कि वह माथिलेरि को मिठाई में जहर मिला दे। यह जहर वह अपने साथ लाई थी और इसका असर बारह घंटे के बाद ही संभव था।

अगले दिन माथिलेरि और चूरियामनी सुबह-सुबह उठीं और नहा-धोकर मंदिर में पूजा करने चली गईं। पूजा से लौटकर दोनों ने महल में आकर भोजन किया। भोजन समाप्त होते ही चूरियामनी अपने घर लौट गई। माथिलेरि ने उसे रोकने की बहुत कोशिश की, पर वह नहीं मानी।

शाम होते-होते माथिलेरि की तबीयत खराब हो गई। उसे चक्कर आने लगे और छाती में दर्द होने लगा। उसके पिता और पति घबरा गए। राजवैद्य को बुलाया गया। राजवैद्य ने दवा दी, पर बेकार।

माथिलेरि मरणासन्न थी। पति की गोद में उसका सिर था। अस्फुट शब्दों में वह बोली—"मेरे...राजा साहब...सेनापति...पोन्नन कोई और नहीं...मैं ही थी।...पिताजी की इजाजत लेकर...मैंने पुरुष का वेश बनाया...था।...राजा साहब...ओफ्! मैं...मैं जा रही हूं!" कहते-कहते उसकी गर्दन लुढ़क गई और वह मर गई।

माथिलेरि का अंतिम संस्कार कर दिया गया। वेनाद का राजा टूटे दिल से अपने घर चल दिया। किंतु पत्नी का वियोग उसे सहन न हो सका और रास्ते में ही दिल के दौरे से उसकी भी मृत्यु हो गई।

14. इनाम के बदले फांसी

मनीराम दत्ता असम का निवासी था और जनता में वह मनीराम दीवान के नाम से प्रसिद्ध था। भारत में चाय की खोज उसी ने की थी। चाय की पत्तियों की खोज करने और उसे पीने लायक बनाने में मनीराम ने ही ब्रिटिश हुकूमत की मदद की थी। लेकिन इस सबके लिए इनाम देने के बदले ब्रिटिश सरकार ने उसे फांसी की सजा दी। उसका कुसूर केवल यही था कि वह देशभक्त और स्वतंत्रता सेनानी था। उसने ब्रिटिश हुकूमत के चाय बागानों के मुकाबले में अपने बागान शुरू किए और कई बार ब्रिटिश सरकार की आलोचना भी की। उसके इन कामों से नाराज होकर ब्रिटिश सरकार ने उसे फांसी दी।

आज से लगभग 165 वर्ष पहले की बात है। तब असम एक स्वतंत्र प्रदेश था। सन् 1823 में स्काटलैंड का एक व्यापारी राबर्ट ब्रूस असम आया। तब मनीराम ने उसे चाय की झाड़ियों के विषय में बताया। दो वर्ष बाद ब्रूस का छोटा भाई चार्ल्स अलेक्जेंडर ब्रूस मनीराम से मिलने आया, तो उसे भी वह जंगलों में चाय के पौधे दिखाने ले गया। दोनों ही ब्रूस बंधु स्वयं को चाय का आविष्कर्ता बताकर इनाम के लिए दावेदार बन रहे थे।

इनाम के लिए दो और दावेदार भी थे। इनमें से एक था अंग्रेजों का गुवाहाटी स्थित ऐजेंट कैप्टन फ्रांसिस जकिंस और दूसरा था, असम लाइट इनफेंट्री का लैफ्टिनेंट चार्लटन। चार्लटन ने कलकत्ता की कृषि सोसायटी को 1832 में अपनी खोज के बारे में सूचना दी। जब कैप्टन जकिंस को इसका पता चला, तो इनाम की दौड़ में वह भी शामिल हो गया और उसने भी चाय कमेटी को अपनी खोज के बारे में सूचना दी। दोनों ही दावेदारों को इनाम मिला। हालांकि चार्ल्स अलेक्जेंडर ब्रूस ने चाय कमेटी को अपनी खोज की सूचना पहले ही दे दी थी, किंतु पर्याप्त प्रमाण न दे पाने के कारण चाय कमेटी ने उसका दावा रद्द कर दिया। चार्ल्स को इससे बड़ी निराशा हुई। उसने चाय कमेटी को एक पत्र लिखकर अपना विरोध प्रकट किया—"चाय के बीज और पत्तियों के बारे में सबसे पहले मैंने ही सूचना दी थी। मेरा भाई राबर्ट ब्रूस असम आया था और उसी ने पहले मौखिक रूप से और उसके बाद 1833 में औपचारिक रूप से चाय की पत्तियों और चाय बनाने की विधि के बारे में जानकारी दी थी।"

लेकिन सत्य यह है कि चाय के बारे में सबसे पहले मनीराम दीवान ने ही जानकारी दी थी और उससे जानकारी प्राप्त करके उन चारों विदेशियों ने चाय की खोज करने का श्रेय

लेकर पुरस्कार प्राप्त करने का प्रयास किया। विडम्बना यह है कि पुरस्कार का वास्तविक अधिकारी न केवल पुरस्कार से वंचित रहा बल्कि फांसी पर भी झूला।

उसे फांसी की सजा क्यों मिली, यह भी चाय की खोज की तरह एक विचित्र घटना है। मनीराम की कहानी भी इतनी ही दिलचस्प है।

चाय की खोज के बारे में बताते हुए मनीराम दीवान

चाय तथा पेट्रोलियम की खोज में पहले अंग्रेजों की असम में कोई दिलचस्पी नहीं थी। तब तक यह क्षेत्र उपेक्षित ही रहा था। जब बर्मा ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया तो वहां के स्थानीय शासकों ने ब्रिटिश सेना से सहायता मांगी। नवम्बर 1823 में डेविड स्काट ने सेना

भेजते हुए स्पष्ट घोषणा की थी—"हम असम में आपके शासनकाल को खत्म करके स्वयं शासन करने के इरादे से नहीं आए हैं, बल्कि हम अपने दुश्मन बर्मा को खदेड़ने के लिए आए हैं। हमारी दिलचस्पी सिर्फ इतनी है कि हम अपनी रक्षा कर सकें।"

बाद में 1826 में बर्मा ने आत्मसमर्पण कर दिया और 'यंदाबो संधि' के तहत असम पर अपना दावा भी छोड़ दिया। सन् 1833 में ब्रिटिश सरकार ने शिवसागर और लखीमपुर जिलों को राजा पुरंदर सिंह को सौंप दिया। सन् 1833 से 1837 तक मनीराम अहोम राजा का सलाहकार था। इससे पहले 1824 से 1832 तक वह जोरहाट के उपायुक्त कैप्टन न्यूविले का शिरस्तदार था।

जब बंगाल के गवर्नर लार्ड बेंटिक ने 1834 में असम में चाय बागान और इसके व्यापार की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए डा० डोक्टर एन. वालिस की अध्यक्षता में एक चाय कमेटी बनाई, तो मनीराम ने असम के स्वदेशी चाय बागानों के बारे में एक ज्ञापन दिया।

चाय और तेल उद्योग की सम्भावनाओं को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने असम को तुरत अपने हाथ में लेने की ठानी। सन 1838 में उन्होंने राजा पुरंदर सिंह को गद्दी से हटा दिया। मनीराम दीवान राजा की सरकारी सेना में नहीं रह गया था। अगले ही वर्ष उसने 'भारतीय चाय कम्पनी' के स्थानीय एजेंट के रूप में काम करना शुरू कर दिया। भारतीय चाय कम्पनी में छह वर्ष काम करके मनीराम ने व्यापार के सारे गुर सीख लिए और अपना स्वतंत्र कारोबार शुरू कर दिया। 'भारतीय चाय कम्पनी' के व्यापार पर इसका बुरा असर पड़ा।

उसकी यह बात ब्रिटिश बागान मालिकों और साथ ही शासकों को भी पसंद नहीं आई। वे मनीराम से खिन्न रहने लगे।

मनीराम अपने कारनामों से ब्रिटिश सरकार को दिन-प्रतिदिन अप्रसन्न ही कर रहा था। वह अपने चाय बागानों में काम करने के साथ-साथ सत्ताच्युत राजा पुरंदर सिंह से भी निकट सम्पर्क बनाए हुए था।

सन् 1850 में गवर्नर जनरल ने सदर कोर्ट, कलकत्ता के एक जज मोफट मिल को असम में जनता और प्रशासन की स्थिति का पता लगाने भेजा। मोफट मिल असम आया, तो मनीराम दीवान ने उसे ज्ञापन दिए। सन् 1854 में मोफट मिल ने सरकार को अपनी रिपोर्ट दी, जिसमें उसने मनीराम के दोनों ही ज्ञापन संलग्न किए। मनीराम ने ये दोनों ज्ञापन स्थानीय अधिकारियों के माध्यम से नहीं दिए थे, इसलिए शिवसागर जिले के उपायुक्त कर्नल सी० एल० हालरीड ने उसे धमकाया। जो चाय बागान मालिक मनीराम से चिढ़ते थे, उन्होंने भी उपायुक्त को उसके खिलाफ भड़काया। वे लोग मनीराम से इसलिए चिढ़ते थे, क्योंकि मनीराम सत्ताच्युत राजा पुरंदर सिंह के परिवार का स्नेहभाजन भी था और असंतुष्ट प्रजा के बीच भी बहुत लोकप्रिय था।

सन् 1857 में राजा पुरंदर सिंह की परेशानियों को गवर्नर जनरल सामने रखने के लिए मनीराम कलकत्ता गया। उसी साल देशव्यापी सिपाही विद्रोह हुआ, जिससे असम भी अछूता न रह सका। डिब्रूगढ़ और गुवाहाटी में तैनात सिपाहियों तथा सत्ताच्युत स्थानीय शासकों में असंतोष भड़क उठा। दुबारा गद्दी पाने के लिए प्रयत्नशील सत्ताच्युत राजा चरंग के अनुयायियों और सैनिकों के बीच निकट सम्पर्क स्थापित हुआ। कलकत्ता प्रवास के दौरान मनीराम इन क्रांतिकारियों से निकट संपर्क बनाए रहा।

एक योजना के अनुसार गुप्त रूप से विद्रोह की तैयारियां होती रहीं। चाय बागान मालिक और विदेशी मिशनरियों में खलबली मच गई। वे अपने-अपने ठिकाने छोड़कर गुवाहाटी में शरण लेने लगे। उपद्रव की आशंका से मारवाड़ी व्यापारी और साहूकार भी अपना माल छिपाने लगे। अगस्त 1857 में असम के आयुक्त ने बंगाल सरकार को पत्र लिख कर यूरोपीय सेना भेजने का अनुरोध किया।

उधर मनीराम दीवान कलकत्ता में गवर्नर जनरल से मुलाकात का इंतजार कर रहा था। मनीराम दीवान राष्ट्रवादी था, इसलिए गवर्नर जनरल से मुलाकात हो पाना आसान नहीं था।

इसी दौरान वह सिपाही विद्रोह के कुछ नेताओं के सम्पर्क में आया। उसने उनके साथ मिलकर क्रांति और विद्रोह की योजनाएं बनाईं और उन पर अमल करना शुरू कर दिया। ब्रिटिश सरकार को मनीराम दीवान की गतिविधियों की जानकारी मिली। इसी बीच कर्नल हॉलरीड को मनीराम दीवान का लिखा एक पत्र मिला, जिसमें उसने अपने साथियों से विदेशी शासकों के विरुद्ध हथियार उठाने के लिए कहा था। कर्नल ने तुरंत कलकत्ता के अधिकारियों को सूचना भेजकर सतर्क कर दिया। नतीजा यह हुआ कि मनीराम दीवान को गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तार करके उसे जोरहाट लाया गया, जहां न्यायालय ने जल्दबाजी में अपना फैसला सुनाकर उसे फांसी की सजा सुना दी। फरवरी 1858 में मनीराम दीवान को फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया गया।

आज असम चाय के मामले में सर्वाधिक समृद्ध है, किन्तु चाय की सर्वप्रथम खोज करने वाला मनीराम दीवान चाय के इतिहास के साथ-साथ देशभक्ति का एक अनोखा इतिहास रच गया और स्वतंत्रता के इतिहास में अपना नाम अमर कर गया।

15. बर्फ का जहाज

बात अब से लगभग पचास वर्ष पहले की है। दूसरा महायुद्ध शुरू हो चुका था और लगभग सभी बड़े देश उसमें बुरी तरह फंसे हुए थे। सारी दुनिया में महायुद्ध का भीषण आतंक छाया हुआ था। अन्य देशों की तरह ब्रिटेन भी इस महायुद्ध की चपेट में था। महायुद्ध में उलझे होने की वजह से ब्रिटिश सरकार का युद्ध मंत्रालय बेहद व्यस्त रहता था। वहां एक अजीब-सी अफरा-तफरी मची हुई थी।

लेकिन अफरा-तफरी के इस माहौल में भी कई बार रोचक प्रसंग भी आ जाया करते थे। दुश्मन को मात देने के लिए युद्ध मंत्रालय के अनेक वैज्ञानिक नए-नए आविष्कार कर रहे थे। इन आविष्कारों में से कुछ तो अजीब सनक का नमूना होते थे।

ब्रिटिश युद्ध मंत्रालय में इस प्रकार के विचित्र आविष्कारों की अनूठी और अजीबोगरीब योजनाएं लेकर आने वाले ऐसे वैज्ञानिकों की कमी नहीं थी, जिन्हें सनकी या सिरफिरा कहा जा सकता था। लेकिन साथ ही ऐसे वैज्ञानिकों की भी कमी नहीं थी, जो सचमुच एक नया और उपयोगी आविष्कार करके उसकी योजना प्रस्तुत करते थे और जिनके सुझावों से लाभ भी उठाया गया। युद्ध मंत्रालय के अनुसंधान विभाग में चूंकि दोनों तरह के वैज्ञानिकों की योजनाएं आती थीं, इसलिए प्रत्येक की पूरी जांच तो करनी ही पड़ती थी, ताकि बेकार योजनाओं और आविष्कार के दावों को छांटकर रद्दी की टोकरी में फेंका जा सके। उस समय ब्रिटेन जीवन-मरण के बीच झूल रहा था और एक-एक मिनट, एक-एक पैसे और एक-एक नवीन आविष्कार का उसके लिए महत्व था। ऐसे में इन बेतुकी योजनाओं के चक्कर में युद्ध मंत्रालय का कितना श्रम, समय और पैसा बेकार जाएगा, इसकी परवाह किए बिना ये सनकी वैज्ञानिक कोई-न-कोई नई योजना लेकर आ ही जाते थे।

ऐसे ही एक आविष्कारक महोदय ब्रिटेन के युद्ध मंत्रालय में सर्चलाइट का एक अनोखा नुस्खा लेकर पहुंचे। इस नुस्खे के अनुसार यदि सर्चलाइट की तेज रोशनी आकाश में फेंककर एक खटका दबा दिया जाए, तो सर्चलाइट की रोशनी का स्तम्भ जमकर ठोस हो जाए और शत्रु का विमान उसमें फंसा रह जाए। फिर तो बाकी काम आसान था ही। सर्चलाइट को घुमाकर धरती पर इतनी जोर से पटका जाए कि ठोस रोशनी में फंसा विमान जमीन से टकराकर चकनाचूर हो जाए।

इस अद्भुत कल्पना के आविष्कारक महोदय से जब पूछा गया कि जनाब, इतना और बता दीजिए कि रोशनी के स्तम्भ को ठोस किस तरह किया जाए, तो आविष्कारक महाशय

हैरत में पड़ गए। बोले, "जनाब अब क्या यह भी मुझे ही बताना पड़ेगा? अगर आपको मेरे इस अनोखे सुझाव पर विश्वास है, तो फिर कठिनाई क्या है? रोशनी को किस तरह खटका दबाते ही ठोस बनाया जाए, यह तो बस प्रयोग और अनुसंधान की बात है। कोशिश कीजिए, हल आसानी से निकल ही आएगा।"

बर्फ के जहाज की योजना पर विचार करते हुए अधिकारी

बड़ी मुश्किल से इन आविष्कारक महोदय से पीछा छूट पाया।

यों तो ऐसे सनकी वैज्ञानिकों की योजनाएं युद्ध मंत्रालय का अनुसंधान विभाग आमतौर पर रद्दी की टोकरी में फेंक देता था। लेकिन एक सनकी वैज्ञानिक ऐसा भी था, जिसे

ब्रिटेन के प्रधान मंत्री विंस्टन चर्चिल का आशीर्वाद प्राप्त हो चुका था। उन महाशय का नाम ज्योफ्रे पाइक था और वह मित्र राष्टों की नौसेना की सर्वोच्च कमान में एक ऊंचे पद पर काम करने वाला अधिकारी था।

ज्योफ्रे पाइक को एक दिन अचानक एक अनोखा ज्ञान प्राप्त हुआ। उसने देखा कि युद्ध में इस्पात, एल्यूमीनियम जैसी धातुओं का उपयोग ही प्रमुख रूप से होता है। अतः वह किसी ऐसे तत्व की खोज में लग गया, जो बिल्कुल नया हो और जिसकी सहायता से दुश्मन को नाकों चने चबवाए जा सकें। अपनी इस खोज में उसे अचानक एक दिन बोध प्राप्त हो गया और उसने एक नया तत्व ढूंढ निकाला। यह तत्व था—बर्फ।

ज्योफ्रे पाइक ने अपनी इस नई खोज का नाम रखा—'हबक्कुक'। अपनी इस खोज को लेकर वह काफी प्रफुल्लित था। उसने अपनी खोज के समर्थन में दलील देते हुए कहा था—"लोहा तथा अन्य धातुएं बर्फ की अपेक्षा दुर्लभ हैं। ये मुश्किल से मिलती हैं, लेकिन मेरे 'हबक्कुक' के लिए जितनी बर्फ चाहिए, वह आसानी से मिल सकती है। बर्फ पानी में डूबती नहीं। सफल आक्रमण के लिए हमें बर्फ के ऐसे विमानवाहक जलपोत तैयार करने चाहिए, जो पानी में डुबोए न जा सकें। लोहे और इस्पात के बने विमानवाहक जलपोतों का आकार सीमित होता है, क्योंकि बहुत भारी या बहुत बड़ा जलपोत पानी पर तैर नहीं सकेगा। लेकिन बर्फ के जलपोत कितने ही बड़े क्यों न हों, उनके डूबने का कोई खतरा नहीं है और उन पर कहीं अधिक संख्या में विमान ल जाए जा सकेंगे।"

ज्योफ्रे पाइक की इस अद्भुत सूझ से चमत्कृत होकर उसके समर्थकों ने भी शोर मचाया—"बर्फ मनचाही मात्रा में मिल सकती है। यह ठोस और सख्त भी होती है। शत्रु को बर्फ के इन जलपोतों पर कोई संदेह नहीं होगा और हम बर्फ की सहायता से युद्ध जीत लेंगे।"

वैज्ञानिकों और इंजीनियरों न जब ज्योफ्रे पाइक की 'हबक्कुक' योजना को सुना, तो हंस दिए। उनका कहना था कि बर्फ ठोस और सख्त होती तो है, लेकिन उसमें अपनी कोई ताकत नहीं होती। लेकिन इन वैज्ञानिकों और इंजीनियरों को जब यह पता चला कि 'हबक्कुक' के इस सनकी आविष्कारक के अत्यंत आकर्षक व्यक्तित्व के सामने बड़े-बड़े जनरल, एडमिरल और वैज्ञानिक भी प्रभावित होकर नतमस्तक हो चुके हैं, तब तो उनके कान खड़े हो गए।

ज्योफ्रे पाइक के समर्थक वैज्ञानिकों की भी कमी नहीं थी। एक वैज्ञानिक ने सिद्ध किया कि बर्फ को भी कंकरीट की तरह मजबूत बनाया जा सकता है। एक इंजीनियर महोदय ने प्रस्ताव रखा कि वह ज्योफ्रे पाइक की योजना को मूर्त रूप देने को उत्सुक हैं और पहला हबक्कुक बनाने को तैयार हैं।

ज्योफ्रे पाइक ने जब अपनी योजना लार्ड माउंटबेटन के सामने रखी, तो उन्होंने उसे तीनों सेनाओं के अध्यक्षों के पास भेज दिया। सेनाध्यक्षों ने उसे मंत्रिमंडल के पास भेज

दिया। मंत्रिमंडल ने यह अनोखी योजना प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल के निर्णय के लिए उनको सौंप दी।

विंस्टन चर्चिल स्वयं भी बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने भी नई-नई किस्म की खोजें की थीं। ज्योफ्रे पाइक की इस नई योजना को देखकर उन्होंने निश्चय किया कि इसका प्रयोग तो करना ही चाहिए, शायद उपयोगी सिद्ध हो! बस, उन्होंने आदेश दे दिया कि उत्तरी ध्रुव प्रदेश से बर्फ का एक बड़ा टुकड़ा काटकर उस स्थान पर ले जाया जाए जहां शत्रु अधिकृत फ्रांस पर हमला करना है। उस पर कुछ विमान, बम वगैरह से लैस करके रख दिए जाएं।

ज्योफ्रे पाइक के समर्थकों की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। जब स्वयं चर्चिल ने योजना का समर्थन कर दिया, तब तो यह तय था कि बर्फ की सहायता से युद्ध जीता जाएगा। बर्फ को किस प्रकार युद्ध के लिए उपयोगी बनाया जाए, यह तो बस अनुसंधान और प्रयोग की बात है।

प्रधानमंत्री चर्चिल के कह देने के बाद तो कुछ रह ही नहीं जाता था। समितियां बैठीं, आदेश जारी किए गए और 'हबक्कुक' के सम्बन्ध में भावी कार्यक्रम तैयार कर लिया गया।

युद्ध की महत्वपूर्ण योजनाओं का संचालन करने वाले अधिकारियों के सामने अब विचित्र धर्मसंकट उपस्थित हो गया। उनके सामने दो ही रास्ते थे। एक तो यह कि जहां तक हो सके, इस पागलपन की योजना को नजरंदाज करें। दूसरा यह कि उसका यथासम्भव विरोध करें। उद्देश्य इन दोनों का एक ही था: और वह यह कि युद्ध के लिए होने वाले ब्रिटेन के प्रयासों को इधर-उधर भटकने न देकर सही रास्ते पर लगाए रखा जाए।

अंततः कनाडा के उत्तरी भाग में एक झील चुनी गई। इस झील के किनारे एक शिविर स्थापित किया गया। झील में 'हबक्कुक' का एक छोटा 'मॉडल' तैयार किया गया, जिस पर प्रयोग किया जा सके। परीक्षण का यह सारा काम बहुत गुप्त रूप से किया जा रहा था। कनाडा के बड़े-बड़े योग्य और दक्ष निर्माताओं को पानी जमाने वाली मशीनें और विद्युत-चालित मोटर यंत्र तैयार करने का काम सौंपा गया था। इस कार्य में कनाडा के हजारों दक्ष वैज्ञानिक लगे हुए थे, हालांकि उन्हें यह नहीं मालूम होने दिया गया था कि आखिर वे जो कुछ भी कर रहे हैं, उसका उद्देश्य क्या है।

परीक्षण सर्दियों के मौसम में शुरू हुआ था। धीरे-धीरे सर्दी समाप्त हो गई और गर्मी का मौसम शुरू हो गया, और तब 'हबक्कुक' योजना पर प्रयोग करने वालों को अचानक ध्यान आया कि बर्फ तो गर्मी पाकर पिघल जाती है। यह ध्यान आते ही समझदार लोगों ने

फिर एक बार चीख-पुकार मचाई —"बर्फ गल जाती है, बर्फ ठंडी होती है, बर्फ की बड़ी-बड़ी चट्टानों को एक-दूसरे से जोड़ने और अपनी जगह जमाए रखने के लिए इस्पात की जितनी चादरों की, बर्फ को पिघलने से रोकने के लिए जितनी रेफ्रीजरेशन मशीनों की और बर्फ की उस चट्टान को चलाने के लिए जितनी बड़ी मशीन की आवश्यकता पड़ेगी, उसमें तो बहुत धन खर्च होगा। इतने में तो इस्पात का एक अच्छा-खासा विमानवाहक जलपोत तैयार किया जा सकता है, जो 'हबक्कुक' की अपेक्षा कहीं अधिक कारगर साबित होगा।"

'हबक्कुक' योजना शायद यहीं समाप्त हो गई होती। किंतु दुर्भाग्यवश इसी समय एक वैज्ञानिक ने एक नई खोज कर डाली कि यदि पानी को जमाने से पहले उसमें कागज बनाने की लुगदी मिला दी जाए, तो यह लुगदी-मिश्रित बर्फ कुछ ज्यादा मजबूत हो जाती है और आसानी से नहीं गलती। इसके अलावा उसमें एक खास गुण यह भी आ जाता है कि उसमें बंदूक की गोली घुसने पर यदि दरार या छेद बन जाए तो बर्फ अपने आप जमकर उस दरार या छेद को भर देती है।

इस नई खोज से ज्याफ्रे पाइक के समर्थक इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने लुगदी-मिश्रित इस नई बर्फ का नाम पाइक महोदय के सम्मान में 'पाइक्रीट' ही रख दिया। उन्होंने कहा कि 'पाइक्रीट' में न केवल पानी में बराबर तैरते रहने का ही गुण है, बल्कि उसमें यह भी गुण है कि गोली, बम या टारपीडो लगने से उसमें यदि दरार या छेद हो जाए, तो उस दरार या छेद को वह अपने आप ही भर भी लेती है।

'हबक्कुक' निर्माण की योजनाएं और तेजी से बढ़ चलीं। एक-एक 'हबक्कुक' के निर्माण में चालीस हजार टन कार्क इंस्यूलेटर की आवश्यकता थी। इसके अलावा उसमें हजारों मील लम्बी इस्पात की नलियों, चार पावर स्टेशनों और सैकड़ों अन्य वस्तुओं की आवश्यकता थी। तब जाकर कहीं 'हबक्कुक' नामक एक विमानवाहक तैयार हो सकता था।

इतने साज-सामान और खर्च से तैयार होने वाले 'हबक्कुक' की रफ्तार सात मील प्रति घंटा से अधिक किसी भी दशा में नहीं हो सकती थी। लेकिन यदि उसमें लगने वाली इस्पात की नलियों को गलाकर एक साधारण विमानवाहक बनाया जाए, तो उसकी रफ्तार 'हबक्कुक' की रफ्तार से चौगुनी तेज होगी।

'हबक्कुक' योजना के अनुसंधान पर इतना समय और धन खर्च करने के बाद एक और नई बात यह सामने आई कि ब्रिटेन के पास कुल मिलाकर एक 'हबक्कुक' बनाने के भी पर्याप्त साधन नहीं हैं।

अब क्या हो? ज्योफ्रे पाइक के समर्थक हिम्मत हारने वाले नहीं थे। ब्रिटेन, कनाडा और अमरीका के शीर्षस्थ नेताओं का इतिहास-प्रसिद्ध क्यूबेक-सम्मेलन हुआ, जिसमें ज्योफ्रे

पाइक के असर में आकर 'हबक्कुक' योजना स्वीकृत कर ली गई। यह तय हुआ कि तीनों देशों की संयुक्त देखरेख में 'हबक्कुक' के निर्माण और बड़े पैमाने पर उत्पादन का इंतजाम किया जाए।

लेकिन जब इतने ऊंचे स्तर पर 'हबक्कुक' के पक्ष में फैसला हो गया, तभी एक बिल्कुल नए और सनसनीखेज तथ्य का पता चला और वह यह कि बर्फ सिर्फ गलती ही नहीं, बल्कि गर्मी में भाप बनकर उड़ भी जाती है।

नतीजा यह हुआ कि तीन देशों की संयुक्त समिति की बैठक होने की नौबत ही नहीं आई। सारी 'हबक्कुक' योजना बर्फ की ही तरह भाप बनकर उड़ गई और ब्रिटेन के वैज्ञानिकों और युद्ध मंत्रालय ने चैन की सांस ली।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार [redacted]